आगम के पन्नो में जैन मुनि जीवन

अचलगच्छीय मुनि गुणवल्लभ सागरजी म.सा.

गुरूसिन्धु कृपापात्रं, मेवाड भूमि भास्करं
श्रेष्ठ साहित्य सर्जकम्, वन्दे गुरू सर्वोदयम्

॥ श्री सर्वोदय पार्श्वनाथाय नमः ॥

आगम के पन्नो में जैन मुनि जीवन

दिव्य कृपा :

कच्छ हालार देशोद्धारक, अचलगच्छाधिपति दादासाहेब श्री गौतमसागर सूरीश्वरजी म.सा
राष्ट्रसंत, भारत दिवाकर अचलगच्छादिपति आ. श्री. गुणसागर सूरिजी म.सा.
मेवाड दिवाकर, प्राचीन साहित्य संशोधक प.पू. गुरुदेव श्री सर्वोदयसागरजी भ.सा.
तपस्वी रत्न, प.पू. मुनिराजश्री चारित्ररत्नसागरजी म.सा.

मंगल आशीष :

सलंग ५१ वे वर्षीतप के आराधक, तप चक्रवर्ती वर्तमान अचलगच्छाधिपति
आ. श्री. गुणोदयसागर सूरिजी म.सा.

शुभकामना :

प.पू. युवाचार्य श्री. कलाप्रभसागर सूरिजी म.सा.
प.पू. आचार्यदेव श्री. कवीन्द्रसागर सूरिजी म.सा.
प.पू. आचार्यदेव श्री. वीरभद्रसागर सूरिजी म.सा.
प.पू. आचार्यदेव श्री. महोदयसागर सूरिजी म.सा.

मंगल प्रेरणा-शुभ आशिष :

अध्यात्म योगी प.पू. मुनिराज श्री उदयरत्नसागरजी म.सा.

संकलन :

अचलगच्छीय ओजस्वी प्रवचनकार-युवा मुनि श्री प.पू. गुणवल्लभ सागरजी म.सा.

प्रकाशक : श्री. चारित्ररत्न फा. चेरी. ट्रस्ट

※ द्रव्य सहायक ※

मातुश्री मणीबेन हीरजी गांगजी शाह परिवार -
गामः लायजा, हाले - दादर (D.M. PAKITWALA)

तीर्थ कल्पेन मणीलाल नानजी हरीया परिवार -
गाम : बाडा, हाले-दादर

॥ उद्‌यो भवतु सर्वेषाम् ॥

प्रस्तावना

अध्यात्म का आईना यानि आगम...... इस आगम दर्पण में अपने आत्मा का निरिक्षण-परिक्षण करके सम्यक् पराक्रम करना यही मानवजीवन में करने योग्य कार्य है।

पूर्वाचार्यो नें इन्ही आगमो का आधार लेकर संस्कृत-गुजराती-हिन्दी-फारसी आदि में अनेकानेक ग्रन्थो की रचना की है - कृतीओंका सर्जन किया हैं, उन सभी शास्त्रो का मूल तो 'आगम पंचांगी' ही है।

श्वेताम्बर मूर्तीपूजक संप्रदायो में मूल आगम और उसकी पंचागी का वांचन श्रमण समुदाय मे कम है - यह प्रस्तुत पुस्तक जो कि सरल हिन्दी भाषा में है, यह सभी साधु-साध्वीजी भगवंतो को अपनी संयम यात्रा के सम्यक चिंतन के लीए उपयोगी बने - अनुपेक्षा रुप स्वाध्याय में सहायक बने... परिणती के सुयोग्य सर्जन में पूरक बने .., सत्यमार्ग की समज का बोधक बने मोक्षमार्ग की साधना-आराधना में मार्गदर्शक बने, यह शुभ भावना से यह पुस्तक का संकलन किया गया है।

गिरनारजी तीर्थ में हुई १० महिने की स्थिरता के दौरान संकलित हुए यह प्रभुवचन चर्तुविध संघ के सभी भव्यजनो के जीवन में सम्यक परिवर्तक बनकर आत्मिक उत्थान के कारक बनकर कर्मनिर्जरा में सहायक बने यही मंगल शुभ कामना।

सबका मंगल हो... सबका कल्याण हो...

लि.

मुनि गुणवल्लभसागर

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सोमचंदभाई लोडाया - 9322275440
ए-१०४, साई क्लासिक बि., महात्मा फुले रोड, मुलुंड (पूर्व), मुंबई

प्रकाश वीरा - 022 - 2300 8871
तीर्थ मार्केटिंग, अमिती ग्रुप, शॉप नं. ३, करीम बिल्डिंग,
ए.स. करी रोड, ग्रांट रोड (पूर्व), मुंबई

प्रथम आगम - आचारांग सूत्र

१) विनय से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से चारित्र, चारित्र से मोक्ष और मोक्ष से अव्याबाध सुख मिलता है ।

२) सभी जीवोने देवेन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर और भाव साधुपणा, इनको छोडकर बाकी सब प्रकार के जन्म अनंतीबार लीए है ।

३) निंदाखोर साधु ''अनंत संसारी '' है ।

४) माया और लोभ ये दोनो राग के कारण है, और क्रोध और मान (अहंकार) यह दोनो द्वेष के कारण है ।

५) साधु के संयम पालन में राजा, गृहस्थ, छकाय, साधुवृंद (गुरुकुलवास), शरीर, आहार, उपकरण यह सब सहायक तत्व है ।

६) दुकान से खरीदे हुए धर्मोपकरण भी साधु को कल्पे नही ।

७) आहार ग्रहण करते समय साधु को ''**प्रमाण और मात्रा**'' का ज्ञान होना जरुरी है।

८) मुनि रस रहित लुखे-सुखे आहार का सेवन करें, यह उत्सर्ग मार्ग है ।

९) कहा है कि अगीतार्थ साधु साध्वीजी-निरवद्य वचन से अनजान है उसे तो बोलने का भी अधिकार नहीं, तो प्रवचन देने का अधिकार तो कहाँ से होवे ?

१०) तप क़षाय के साथ साथ 'शोक' और 'वेद' को भी जलाता है ।

११) निंदा के साथ और प्रमाद के साथ वैराग्य नही रहते ।

१२) जो व्यक्ति हिंसक है, विषय-कषाय की प्रवृत्ति में निरंतर आसक्त है, उनके दोस्ती तो क्या परिचय भी नहीं करना चाहिए ।

१३) ब्रह्मचर्य व्रत की सिध्दि के लिए साधक को विषय सुख के आनंद की जुगुप्सा करनी, विषय किंपाक फल समान है - उसका परिणाम कडवे दुःखदायी फल और दुर्गती देनेवाले है, इसका निरंतर चिंतन और शरीर की अशुची भावना का विचार करना ।

१४) शुभ क्रिया यह शुभ भाव का कारण है ।

१५) योग्य और पात्र जीव अपने भूतकाल के भव और भविष्य के भव का तथा यहाँ में क्यु आया हुँ, मेरा कर्तव्य क्या है, मुझे यहाँ से कहाँ जाना है इस बात का जो यथार्थ चिंतन करे तो भी उसे वैराग्य की प्राप्ति होती है ।

१६) मुनि हास्य और उसके कारणो का त्याग करें ।

१७) मुनि का एक विशेषण 'अकुतो भयक्त' भी है । यानि मुनि सदैव बाह्य-अभ्यंतर रुप से अभय-निर्भय है।

१८) दिक्षा लेने के बाद **'अध्ययन काल पूरा होने के बाद'** मुनि निरंतर उग्र तप करके अपने शरीर के मांस-खून को क्षीण-कृशकाय करें ।

१९) जो व्यक्ति पहले, पाप का सेवन करता है, फीर उसको ढकने के लिए झूठ बोलता है, वह व्यक्ति अति घोर गाढ कर्मो को बांधता है - ऐसा भगवान महावीर ने कहाँ है ।

२०) परिग्रहधारी मुनि गृहस्थ के समान ही है । ब्रह्मचर्य का संपूर्ण पालन केवल अपरिग्रही ही कर सकें, क्योंकि उसे परिग्रहरुप अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं है ।

२१) समुदाय में रहें हुए साधु को उनकी भूल के लीए जब डाँट सुनने मीले तो उस सदुपदेश पर विचार किये बीना, कषायो के कटु परिणामो को सोचे बिना, परमार्थ को पीछे रखकर, खानदानी को छोड, वचन सहन नहीं करके जो साधु समुदाय को छोडकर अकेला स्वतंत्र विचरने लगता है, वह इसलोक-और परलोक, दोनो में दु:खी होता है ।

२२) मुनि को अति मात्रा में जब कामवासना सताये तब उसका निवारण करने के लिए मुनि नि:सार आहार ले, उणोदरी तप करे, कार्योत्सर्ग करे, शीत-उष्ण-डंख आदि परिषहो को सहन करें, स्थान को छोडकर दुसरे, ग्रामानु ग्राम विहार करें अंत में भी जो विषयेच्छा दूर न हो तो, अंतमें आहार भी छोड देवे, (अपवादिक मार्ग रुप आत्महत्या भी करें) । लेकिन मुनि कीसी भी संयोगो में विषय सुख का सेवन न करे । क्योंकि इसमे अपवाद मार्ग नही है।

२३) पूर्व में कीए हुए दुष्कृत्यो के आचरण रुप अशुभ कर्म केवल घोर तपश्चर्या करने से ही छूटते है ।

२४) उणोदरी के तीन प्रकार =

१. आहार और पानी की उणोदरी

२. उपधि - उपकरण की उणोदरी

३. कषाय की उणोदरी

२५) वर्तमान में उत्तम संयम पालना यह तक्षक नाग के मस्तक में रहें हुए ज्वरहर मणि लाने जैसा असाध्य कार्य नहीं है, क्योंकि अन्य भी अनेक मुनियों नें ऐंसा उत्तम सयंम का पालन दीर्धकाल तक कीया ही है ।

२६) मुनि 'कृशकाय' होते है, इससे उन्हे परिषहो को सहन करने में सहायता होती है ।

२७) कर्म के उदय से सुखशीलता के कारण शास्त्रोकत साध्वाचार का पालन नही करनेवाले मुनि भी आए हुए लोगो को मार्ग तो सच्चा ही बतावे, यानि कहें, करनें जैसा तो यह है, लेकीन ऐसा करने में हम समर्थ नही है, लेकिन ऐसा न कहे की इस दु:षम पंचमकाल में संघयण बल कम होने से मध्यम वर्तन ही कल्याण का कारण है, अभी उत्सर्ग का अवसर नहीं है, इत्यादी वचन न बोले.

२८) तिर्यंच मुनि को भय–आहार–द्वेष या बच्चो के संरक्षण के लीए उपसर्ग करे ।

२९) जो साधु बहुश्रुत, आगम ज्ञाता, हेतु बताने में कुशल, धर्मकथा लब्धि संपन्न, द्रव्य (क्षेत्र) काल को उचित रुप में जानने वाला, गुण जाति युक्त हो, वो ही साधु उपदेश (प्रवचन) देने के लीए पात्र (योग्य) है ।

३०) आगमो में मुनि को स्मशान में रहने या कार्योत्सर्ग करने का विधान बताया है लेकिन निद्रा (सोने) का निषेध कीया है ।

३१) आधाकर्मी गोचरी वहोराता साधु और वहराने वाला गृहस्थ दोनो अनंत संसारी बनते है, इसलीए कोई आधाकर्मी वहोराता भी हो तो साधु उसे समजावे, की यह सुपात्रदान नहीं है, और अपने दोनो के लीए दुर्गती का कारण है । ऐसा कहकर साधु उसको स्पष्ट रुप से मना कर दे और उसे निर्दोष आहारचर्या के लाभ बतावे ।

३२) वस्त्र का त्याग करने से (कम करने से) लाधव गुण की प्राप्ती होती है और लाधव गुण से कायाक्लेश रुप तप की, प्राप्ति होती है ।

३३) बिमार बने हुए साधु, कोई अन्य सार्थ आकर मेरी सेवा-सुश्रुया करे ऐसी मनमें भी विचार न लावे और कोई निरोगी साधु कर्म निर्जरा के भाव के कारण उनकी सेवा-वैचावच्च करे तो वह उसमें आसक्त-गृद्ध न बने।

३४) उपवास वाले व्यक्ति को आहार के पास भी जाने की भी मनाई करने में आई है।

३५) जब शरीर बिमार पडे, व्याधिग्रस्त बने, तब तो विशेष रुप से **'उणोदरी तप'** करना चाहिए।

३६) भगवान महावीर, शीतकाल में छाँव में और उष्ण काल (गीष्म) में उत्कृष्ट आसन में धूप में आतापना लेकर ध्यान करते थे।

३७) भगवान महावीर उत्कट, गोदोहिका, विरासन आदि अवस्थाओ में मुख विकारादि चंचल चेष्टाओ को छोडकर उर्ध्व-अधो और तिर्च्छा लोक में रहे हुए जीव तथा परमाणु के द्रव्य-गुण-पर्याय आदि रुपो का ध्यान करते थे।

३९) साधु उसके पूर्व गृहस्थाश्रम के अलि परिचित गृहस्थो के घर पर गोचरी न जाए। (विशेष शासन प्रभावना या दिक्षा प्रतिबोध जैसे अपवादिक कार्यो में जयणा)

४०) साधु-साध्वीजी धोये हुए कपडो को दोरी/रस्सीपर नहीं बल्कि नीचे ही अचित भूमि पर सूकावे।

४१) तीन प्रकार के पात्रे बताने में आए है।

१. तुंबडे के २. काष्ट के ३. मीट्टी के

४२) सुई, कैची, कान-दांत खोतरणी, नेईल कटर आदि वस्तु साधु जब उसके मालीक गृहस्थो को वापीस दे तो सीधे हाथ में न दे बल्कि नीचे जमीन पर रखकर देवें।

४३) निष्कारण (गाढ कारण बिना) साधु मालीश एवं (हाथ-पैर दबाने रुप) मर्दन आदि करावे नहीं।

४४) साधु तीन वस्त्रो से ज्यादा न ओढे।

४५) जो गृहस्थ गोचरी के लीए बुलाने आवे, उसके घर, या उसके साथ साधु गोचरी न जावे, ऐसा इस सूत्रमें उत्तराध्यायन में तथा निशीय सूत्र में भी कहा है।

२. सूत्रकृतांग सूत्र (सूयगडांग सूत्र)

४६) जो सदैव खुद की प्रशंसा और दुसरो की निंदा करते रहता है वह अनंत संसार में भटकता है।

४७) मायावी व्यक्ति भले ही उत्कृष्ट धर्म क्रिया करे, तो भी उसका मोक्ष होता नही है। भले चाहे वो मासक्षमण के पारणे मासक्षमण भी क्यों न करता है।

४८) संसारीयों का अति परिचय साधु के लीए दुःख का कारण है, इसलीए संयमी साधु, परिचित परिजनो का त्याग करें। गृहस्थो के द्वारा मिलनेवाले वंदन-पूजन-सत्कार भी साधु की साधना में विघ्नरुप है।

४९) साधु-राजा राजनेता आदि का संसर्ग न करे, क्योंकि उससे समाधिभंग होता है। वह सामने से आए तो सीर्फ धर्मउपदेश देवे।

५०) अज्ञान से उपार्जित पूर्व कर्मो का नाश **'परिषहो के सहने'** से होता है।

५१) फूल, फल का रस, दारु, मांस और स्त्री को भयंकर जानकर जिन्होनें इनका त्याग किया है, वह दुष्करकारक मुनि को मैं वंदन करता हुँ ।

५२) ज्ञानादि से संपन्न साधु, सभी जीवो को आत्मवत, अर्थात खुद के आत्मा के जैसा देखे ।

५३) सचित उपसर्ग-यानि= लिर्यंय या मनुष्य अपने शरीर के अवयवो से मारे वो, अचित उपसर्ग = लकडी, पथ्थर से मारे वो, स्थान उपसर्ग=जहाँ क्रुर, म्लेच्छ, चोर आदि के स्थान हो वहाँ तकलीफ होवे वो, काल उपसर्ग = अती ठंडी, अती गरमी वाली जगह, भाव उपसर्ग = ज्ञानावरणदि मोहनीयादि कर्म परेशान करे वो ।

५४) स्नेहादि संबंध रुप अनुकूल उपसर्ग दिखने में सूक्ष्म है, इसलीए समर्थ साधु अनुकूल उपसर्ग का भी त्याग करता है ।

५५) वाद करते समय भी मुनि खुद की चित्तवृत्ति को प्रसन्न रखे और दुसरे मनुष्य उसके विरोधी न बने ऐसे आचरण से वह अपना पक्ष रजू करे ।

५६) दु:ख दुष्कृत्यो का नाश करने के लीए, क्षमा वैर का नाश करने के लीए काया में अशुचि भाव वैराग्य के लीए, वृध्दत्व संवेग के लीए और मृत्यु सर्व त्याग महोत्सव के लीए है ।

५७) बुध्दिमान पुरुष (मुनि) जरुरत पडने पर स्त्री से जब बात करे तो, अस्थिरता से, स्नेह बिना, अवज्ञा युक्त होकर देखे और अक्रोछित होते हुए भी क्रोध से देखे ।

५८) किसी कारणसर गृहस्था के घर पर साधु को उपदेश देने का प्रसंग आवे तो विषयजुगुप्सा प्रधान वैराग्य जनक उपदेश विधिपूर्वक देनेका विधान इस सूत्र में कीया गया है ।

५९) जो साधु प्रासुक और उदगमादि तमाम दोष रहित आहार वापरता है उसे विध्वानो ने 'शीलवंत' कहा है ।

६०) वनस्पतिकाय की घोर हिंसा करनेवाला जीव दुसरे भव में ही बाल या युवा या अल्पवय में ही मर जाता है (मृत्यु प्राप्त करता है)

६१) खुशामतखोर साधु (मस्का मारनेवाला) सदाचार भ्रष्ट पार्श्वस्थ (पासत्था) भाव को प्राप्त करता है ।

६२) व्याकरण, शुष्क तर्क-नय-न्याय आदि ज्ञान से खुद को ज्ञानी-पंडित समझनेवाले साधुने भी अगर जो आत्मतत्व के बोध को जाना न हो तो वह भी अबुद्ध (अबोध) है ।

६३) साधु पूजा-सत्कार पाने हेतु तप न करे और जो भी तप करे उसे गुप्त रखें (अर्थात जाहिर न करे)

६४) कम खाय, कम बोले, कम निद्रा करे और कम उपधि-उपकरण रखे वह साधु को देवता भी नमन करे ।

६५) मुँह में व्यवस्थित रुप में जाए इतने प्रमाणवाले कवल खानेवाले को अल्पाहारी, १२ कवल अपार्ध उणोदरी, १६ कवल-अर्धउणोदरी, २४ कवल अल्प उणोदरी, ३० कवल प्रमाण प्राप्त और ३२ कवल को संपूर्ण आहार कहा गया है ।

६६) साधु के गुणो को जो छोड दे वह पासस्था, संयम अनुष्ठान से जो कंटाले वह अवसन्न और खराब आचरण करनेवाला साधु-यानि कुशील । संवेगी सुसाधु इन तीनों का संपर्क-संसर्ग या सहवास न करे ।

६७) गृहस्थो को परस्पर में, व्यवहार में या मिथ्याशास्त्र में शंका होवे और प्रश्न उठे तो सुसाधु उसका निर्णय करने के लिए न जाए ।

६८) कोई व्यक्ति साधु को पूछे की धर्मशाला, भोजनशाला, पानी की प्याउ, होस्पीटल बनाने में पुण्य है या नहीं, तो साधु हा या ना, कुछ भी जवाब न दे, मौन रहे, वे ही सच्चा साधु है ।

जो यदि हा कहे तो साधु को उसके निर्माण में होनेवाली छकाय की जीवहिंसा का दोष लगे और ना कहे तो उसके द्वारा जरुरत मंद लोगो की पूर्ण होनेवाली जरुरतो के अंतराय वृती छेद का दोष लगे इसलीए मुनि मौन रहे ।

६९) जो सदा गुरुकुल वास में रहते है वो ही जीव सम्यक ज्ञान के अधिकारी बन सकते है और दर्शन तथा चारित्र में स्थिर बनते है । अत: वह यावज्जीव धन्यवाद के पात्र है ।

७०) गुरु का नाम छुपाने वाला अनंत संसारी बनता है ।

७१) प्रवचन देनेवाला साधु श्रोताजनो का सम्यकत्व स्थिर बने ऐसा बोले, लेकिन श्रोता मन में शंकित बने ऐसा न बोले ।

७२) जो साधु गीतार्थ गुरु के पास के श्रुतज्ञान शीखा हो, उसे सम्यक प्रकार से धारण करके उनकी आज्ञा लेकर वह दुसरो को पढ़ाने-शीखाने का उर्घम करके ऋणमुक्त होने का प्रयत्न करे पर, सुखशीलीया बनकर यूँ ही बैठा न रहे ।

७३) बाल मुनि, ग्लान (बिमार) मुनि और वृद्ध मुनियों के लिए ही सुबह में गोचरी (नवकारशी) का विधान है । सभी साधु के लीए नहीं ।

७४) जिस प्रकार धाव को रुझने के लिए मलम लगाने में आवे इस प्रकार साधु संयम में सहायक शरीर को सीर्फ टीकाने हेतु गोचरी करे ।

७५) अति प्यास लगी हो तब खाना चाहिए नही और जब अति भूख लगी हो तब कुछ पीना चाहिए नहीं ।

७६) अगीतार्थ साधु के लिए २ प्रहर (६ घंटे) और गीतार्थो के लिए १ प्रहर (३ घंटे) की निद्रा बताने में आई है ।

७७) पाप श्रुत का आचरण करने वाले (प्रयोग) करनेवाला जीव मरकर अधम कोटी के आसुरिक-किल्बीषीक स्थान में उत्पन्न होते है वहाँ से च्यवीत होकर (मरकर) जनम से ही गुंगे-अंधे जीव बनते है ।

७८) छकाय की घोर हिंसा करनेवाले जीव को मातृ-पितृ वध, अप्रिय का संयोग, प्रिय का वियोग, धन नाश, शारीरिक वेदना आदि अनेक वेदनाऐं सहन करनी पडती है ।

७९) इर्यासमिती के उपयोग से चल रहा साधु जीवो को मारने की बुध्दि न होने पर भी शायद कोई जीव पैर नीचे आ जाए तो दोष नहीं और तंदुलीया मत्स्य कुछ भी न करते हुए भी मन से विचार करके पाप बांधकर ७ वी नरक में जाए ।

८०) साधु को "**परिमीत पानी पीनेवाले**" कहा गया है ।

८१) साधु कोई भी चीज को एकांत वचन से न बोले, क्योंकी जिनेश्वरो को द्वारा कहा गया धर्म अनेकांतवाद मय है ।

३. ठाणांग सूत्र

८२) श्रोताओ को श्रवण की विधि–निद्रा और विकथा करा छोडकर, गुप्ति से गुप्त होकर, अंजली जोडकर भक्ति और बहुमान पूर्वक, उपयोग रखकर गुरु के सानिध्य में नीचे बैठकर श्रवण करना चाहिए।

८३) विनय, अभ्युत्थान और साधु सेवा में पराक्रम (पुरुषार्थ) करने से सभ्यगदर्शन तथा देश या सर्व से विरती का लाभ होता है।

८४) 'आरंभ और परिग्रह' यह दो को जानकर छोडे बिना जीव केवली प्ररुपित सम्यक धर्म को सम्यक तरह से समज नही शकता है।

८५) साधु साध्वीओ को तमाम धर्म क्रियाएँ पूर्व या उत्तर दिशा के सामने करनी या जिस दिशा में जिन चैत्य–प्रतिमा हो उनके सामने करनी।

८६) साधु यवमध्याचंद्र प्रतिमा और वज्रमध्य प्रतिमा को धारण करे। यवमध्याचंद्र प्रतिमा यानि शुक्ल पक्ष की एकम से एक कवल आहार करके प्रतिदिन बढते बढ़ते पूर्णीमा को १५ कवल आहार करे फीर कृष्ण पक्ष की एकम को १५ कवल आहार करके, प्रतिदिन एक एक कवल आहार घटाते हुए अमावस को एक कवल आहार करे इसे यवमध्याचन्द्र प्रतिमा कहते है।

८७) मति–श्रुत ज्ञानावरण और दर्शन मोहनीय की प्रकृतीओ को अनंत भागो से समय समये छोडते हुए जीव पहले 'न' का लाभ प्राप्त करता है, इस प्रकार क्रमश: एक एक वर्ण (अक्षर) के लाभ को प्राप्ति करके क्रमश: विशुध्द बना हुआ जीव संपूर्ण नवकार को 'पद' से प्राप्त करता है।

८८) माता-पिता, शेठ (स्वामी) और धर्माचार्य (गुरु) का बदला-ऋण चूकाया नहीं जा सकता । अगर कोई व्यक्ति अपने माता पिता को सुगंधी द्रव्यो से स्नान कराकर, किंमती वस्त्र अलंकार पहनाकर, रसयुक्त ३२ व्यंजनोयुक्त भोजन कराकर उनको अपने कंधोपर बिठाकर भी सेवा करे तो भी उनके उपकार का बदला चूकाया नहीं जा सकता लेकिन व्यक्ति अपने माता पिता को केवली प्ररुपित धर्म समजाकर-उनको धर्म से जोडे, आचरण से धर्मी बनावे तो वह अपने माता-पिता के उपकार का बदला चूका सकता है ।

८९) स्थवीरो के तीन प्रकार -

१. ६० साल से ज्यादा उम्रवाले साधु वय स्थवीर.

२. २० साल से ज्यादा दिक्षा पर्याय वाले साधु पर्याय स्थवीर

३. ठाणांग-समवायांग सूत्र के धारक साधु-श्रुत

स्थवीर आहार देना, वंदन करना आज्ञानुसार वर्तन करना इत्यादि से वय स्थवीर की भक्ति करनी खडे होना, आसन देना, प्रशंसा करनी चाहिए, उनसे नीचे आसन पर बैठना इत्यादी से श्रुत स्थवीर की भक्ति करनी ।

और खडा होना-वंदन करना - दांडा आदि ग्रहण कर इत्यादि में गुरु के निर्देश अलावा भी पर्याय स्थवीर की भक्ति करनी ।

९०) दृढधर्मी, संविग्न, ऋजु, संग्रह- उपग्रह कुशल, सूत्रार्थ वेता, साध्वीओकी भाव संयम की रक्षा करने वाले योग्य मुनि को गणि पद देना चाहिए ।

९१) अति आतापना लेने से, उत्कृष्ट क्षमा रखने से और घोर निर्मल तपस्या करने से श्रमण तेजोलेश्या लब्धि का धारक बनता है । भगवती सूत्र में भी कहा गया है कि,

हे गोशालंक (कुल्ले १ कोगळाजेटलुं पाणी) जो नाखून सहित मोडे हुए (१ मुट्ठी) उडद के बाकुले की मुष्टी के द्वारा और एक चुलु प्रमाण पानी के द्वारा निरंतर छठ्ठ (बेले के पारणे बेला) तप करके उपर हाथ रखकर सूर्य की सन्मुख आतापना भूमि में आतापना लेता हुआ विचरे उसे ६ मास महिने के अंत में संक्षिप्त विस्तीर्ण ऐसी विपुल तेजोलेश्या की प्राप्ती होती है । वर्तमान कालमें २० वी सदीमें गिरनार के रहे हुए एक साधक ने ऐसी साधना करके यह सिध्धि पाई थी ।

९२) साधु शरीर को किंचित झुकाता हुआ, अनिमेष नेत्र से एक पुदगल पर निश्चल दृष्टि रखकर, दोनो पैरो को संकुचित करके लंबे हाथ करके कार्योत्सर्ग में रहे ।

९३) संघ का, या धर्म का, या साधु साध्वीओ का अपलाप-निंदा करनेवाला जीव किल्बीषीक बनता है, जैसे चांडाल आदि मनुष्यगति के अश्पृश्य है वैसे ही किल्बीषीक (देवगती) के अश्पृश्य निम्न कोटी के है ।

९४) हस्तकर्म करनेवाले, या रात्रिभोजन के दोष का सेवन करनेवाले मुनि को तथा शय्यात्तर के घर का आहार लेनेवाले मुनि को १५ उपवास का प्रायश्चित्त आता है ।

९५) अविनित, विगई भोजन आसक्त, मायावी और अति क्रोधी को वाचना देनी चाहिए नहीं ।

९६) परिहार विशुध्ध तप को आचरनेवाले मुनि परिहारक वर्षाऋतु में उत्कृष्ट से ५, मध्यम से ४, जधन्य से ३ उपवास करे, शिशिर में ४.३.२, ग्रीष्म में ३.२.१ उपवास करे और पारने में आयंबिल करके पुनः उपवास प्रारंभ करे ।

९७) साधु को निरंतर चिंतन योग्य ३ भावनाएँ-

१. कब में सब श्रुत-ज्ञान को पढुंगा । आगम का पारगामी बनुंगा ।

२. कब में एकलविहारी प्रतिमा धारण कर अप्रमत विचरुंगा (१२ प्रतिमा धारक भिक्षु बनुँगा)

३. कब में पादोपगमन संथारा करुंगा । (अनशनव्रत अंगीकार करुंगा)

९८) दोष रहित अभ्यास बिना श्रुत-ज्ञान के अर्थ की प्रतिती न होने से सुध्यान होता नहीं है, यानि ज्ञान 'प्रकाशक' है, तप 'शोधक' है और संयम 'गुप्तिकर' है इन तीनो के समायोग में ही मोक्ष कहा गया है ।

९९) धर्मध्यान के ४ प्रकार

१. आज्ञा विचय =आप्त पुरुष समान तीर्थंकर आचार्यादि के वचनो को सुनकर प्रवचन के अर्थ का विचार करना ।

२. अपाय विचय=आश्रव-प्रमाद आदि से होनेवाले दोषो का चिंतन करता ।

३. विपाक विचय-शुभ या अशुभ कर्म के भूगतने वाले विपाक फल-परिणाम का चिंतन करना (यहाँ मूर्ति, आलंबन आदि स्थापना निक्षेप) आया ।

४. संस्थान विचय = द्रव्य-क्षेत्र-आकृति का चिंतन करना (यहा मूर्ति आलंबन आदि से स्थापना निपेक्षा आया)

१००) शुक्ल ध्यान के ४ भेद :

१. पृथकत्व विर्तक सविचारी-शब्द से अर्थ में या मन आदि कोई एक योग से दुसरे योग में श्रुत सहित जाना वह विचार सहित ध्यान (वह भेद अरागभाव दशावाले जीव को होता है ।)

२. एकत्व वितर्क अविचारी :

श्रुत के आश्रय वाले पर्यायो का अर्थ के शब्द या मन आदि योग में परस्पर गमन विद्यमान नहीं है ऐसे अविचारी ।

३. सुक्ष्म क्रिया अनिवृत्ती :

निर्वाण गमन काल में मनोयोग तथा वचन योग का विरोध और काय योग का अर्थ निरोध–ऐसे केवली का ध्यान । क्योंकि वहाँ अभी काया संबंधी सुक्ष्म उच्छवासादि है ।

४. संमूच्छित क्रिया अप्रतिपाती :

संमूच्छिम क्रिया भी शैलेशी करण में योग निरोध से कायीकादी क्रिया नाश हो गई हो वह कक्षा मेरु माफीक स्थिरता वह शैलेशी केवली मध्यम रीतसे पांच ऱ्हस्व स्वर बोलने में जितना समय लगे उतना काल शैलेश अवस्था होती है । केवली काययोग के निरोध से सूक्ष्मक्रिया अनिवृतिरुप ध्याता है और फीर शैलेशी अवस्था में समूच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती ध्यान करता है ।

१०१) शुक्ल ध्यान की ४ अनुप्रेक्षाएँ :

१. अनंत वृतितानु प्रेक्षा : अत्यंत विस्तृत अनंत जीव की भव परंपराओ का चिंतन।

२. विपरीणामानु प्रेक्षा : विविध प्रकार से ऋध्दि सुख आदि का परिणाम होना ।

३. अशुभानु प्रेक्षा : धिक्कार रुप असार संसार के अशुभत्व का चिंतन ।

उदा.– रुप गर्वित युवान मरकर उसीके शरीर में कीडे के रुप में जन्मलेता है आदि.

४. अपायानु प्रेक्षा : कषायो और विषयो के दुष्परिणाम : दृष्ट फल का चिंतन ।

१०२) साधु-साध्वीयों को आषाढ, आसो, कार्तिक और चैत्र महिने की कृष्णपक्ष की एकम (वदी) एकम को स्वाध्याय नहीं करना (असज्जाय) है ।

१०३) मोह रुप भाव रोग की चिकित्सा- विगई त्याग, निर्बल आहार, उणोदरी, आयंबिल तप, कार्योत्सर्ग, भिक्षाचर्या, वैयावच्च, विचरण, मांडली में प्रवेश करने से होती है ।

१०४) बेइन्द्रीय जीवो का आरंभ हिंसा करनेवाले जीव को रसनेन्द्रिय + स्पशेन्द्रीय के सुख प्राप्त होते नहीं है ।

१०५) चर्तुविघ संघ का और देवताओ का अवर्णवाद (निंदा) करनेवाला जीव दुर्लभ बोधिपणे को प्राप्त करता है ।

१०६) कषायी जीव को पर्याय, परिवार, श्रुत, तप, लाभ और पूजा सत्कार भी अहित, अशांती, और अशुभ परंपरा के लिए होते है।

१०७) जो व्यक्ति खमाकर उपशांत कीये हुए कलहो को पुनः उदीरता है (उत्पन्न) करता है, वह पापात्मा जानना ।

१०८) गमना गमन में विहार करके पहोंचे तब, सोने से पहेले, उठने के बाद, रात्री में स्वप्न दर्शन बाद, नाव के द्वारा नदी पार करने के बाद साधु-इर्या पथिकी प्रतिक्रमण यानी इरियावही - कार्योत्सर्ग करे ।

१०९) प्राणी वध-मृषावाद=अदतादान- मैथुन-परिग्रह में अन्युन वध '१०० उच्छवास' प्रमाण कार्योत्सर्ग करने का विधान है ।

१९०) आचार्य और ग्लान (बिमार) साधु के वस्त्र का काप बारम्बार निकालना अर्थात इन दोनो को श्वेत उज्जवल वस्त्र ही पहनने और श्रेष्ठतम आहार से आचार्यकी भक्ति करनी चाहिए (मेले नहीं)

१११) इन (८) चीजो में सम्यक पुरुषार्थ-उर्धम-पराक्रम करना चाहिए।

(१) श्रुत धर्म सुनने में
(२) सूने हुए भूल न जाए, दृढ रहे उसके लीए
(३) सयंम में (४) तप में
(५) शिष्यवर्ग के संग्रह के लिए
(६) नूतन दिक्षीतो को समाचारी भिक्षाचर्या आदि का ज्ञान शीखाने में
(७) बिमार की वैयावच्च करने में
(८) साधूओ के परस्पर कलह को रोककर शांत करने में

११२) साधु चार प्रकार के आहार मे से उत्सर्ग से खादिम और स्वादिम रुप २ प्रकार के आहार का कायमी त्यागी रहेवे।

११३) काम विकार रोग का कारण है क्योंकि काम विकार की अप्राप्ति में भी पहेले अभिलाष, फीर चिंता-स्मरण-गुणकीर्तन-उद्वेग-प्रलाप-उन्माद-व्याधि-जडता और अंत में मृत्यु होता है तथा अति विषय सेवन करने से भी क्षय रोग (टी.बी.) आदि होते है।

११४) प्रश्न : अनागत और अतिक्रान्त तप यानि क्या ?

कोई साधु पर्युषण में मुझे आचार्य, ग्लान, तपस्वी आदि की वैयावच्य करनी होनी तब मेरे से तप नहीं होगा इस लीए पर्युंषण काल के पहेले ही तप कर लेवे वो अनागत तप और इसी प्रकार

की विचारणा करके से पर्युषण बाद मे तप करे वो अतिक्रान्त तप.

११५) कोटी सहित तप यानि महिने में अमुक दिन अमुक तपश्चर्या करनी ऐसा धारके जीवन के अंतिम श्वास तक ग्लान अवस्था में भी वह तप को कायम रखे वह कोटी सहित तप है।

११६) शिष्य खुद के आसन पर बैठा रहकर ही अगर गुरु को सूत्र या अर्थ पूछे तो शिष्य को प्रायश्चित आवे।

४. समवायांग सूत्र

११७) जल्दी जल्दी चलने से, अतिरिक्त शय्या-आसन रखने से, बात बात मे गुस्सा करने से, पीठ के पिछे निंदा करने से, अकाल में स्वाध्याय करने से, मीट्टी (रज) वाले हाथ-पैर रखने से, सूर्यास्त होवे तब तक खाते-पीते रहने से, रात को जोर जोर से बोलने ऐसे कुल २० स्थानो से (कार्यो) से साधु को असमाधि होती है।

११८) रात्री भोजन करने से, शय्यातर के घर का आहार ग्रहण करने से, बारम्बार पच्चखाण लेकर भी आहार करने से, जान बुचकर हिंसा-मृषा-अदत के कार्य करने से, हस्तकर्म करने से, जमीकंद खाने से, आधाकर्म आहार खाने से, आसन बिछाए बिना बैठकर स्वाध्यायादि करने से - इस प्रकार के दोषो के कारण चारित्र मलीन बनता है - शबल दोष लगता है।

११९) कोई जीव को पानी में डुबाकर या मुँह बंद करके साँस रोककर या अग्नि के धुँवे से या शिरपर शस्त्र आदि मारकर घात (मृत्यू)

करने से या अब्रम्हचारी होते हुए भी खुद को ब्रह्मचारी कहलाने से खुद के परम उपकारी को ही मारने से, दिक्षा लेनेवाले को धर्म से भ्रष्ठ करने से, तीर्थंकर-आचार्यादि की निंदा करने से, तपस्वी नही होते हुए भी खुद को तपस्वी कहलाने से, देव के दर्शन न होते हुए भी, मुझे ये देव देवी प्रत्यक्ष है में उन्हे देख सकता हुँ ऐसा करने से, अति काम अभिलाषा-अति माया-अति लोभ आदि करने से इस प्रकार के कुल ३० कार्यो से जीव 'महा मोहनीय कर्म' बांधता है।

१२०) गुरु के आगे चलना, गुरु के समान आसन पर बैठना, गुरु से पहेले गोचरी कर लेनी, गुरु के आने पर भी खडे न होना, गुरु के पूछने पर बैठे-बैठे ही उत्तर दे देना, गुरु के बुलाने पर सुनते हुए भी नहीं सुना ऐसा कर देना, गुरु के आसन-संथारे को पैर लगाना, गुरु के सामने बोलना, गुरु कीसीसे बात कर रहे हो तो बिच में बोलना आदि गुरु संबंधित ३३ आशातना का त्याग करना चाहिए।

१२१) अंर्तमुर्हत एक वस्तु में चित्त का स्थापन करना उसे जैनागम में ध्यान कहा गया है। स्वाध्याय से प्रशस्त्र ध्यान की ओर जा सकते है।

५ श्री भगवती सूत्र

१२२) सूत्र की शरुआत भाव मंगल रुप नवकार मंत्र के पांच पदसे की है। अरिहंताणं के अलावा 'अरहंताणं' यानि जो थोडी भी आसक्ति रखते नहीं है वो, 'अरहयताणं' मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयो के संपर्क होते हुए भी जो अपना वीतराग भाव छोडते नही है वो

'अरुहंताणं' यानि जीसके कर्मबीज क्षीण हो जाने से फीर भवांकुर की उत्पत्ति होने वाली नही है इस प्रकार के पाठ भी आगम में मीलते है ।

१२३) निर्वाण साधक योग को साधे और जो साधु संयम करनेवाले को सहाय करे और सर्व प्राणीयों में समभाव रखे-वह भावसाधु है ।

१२४) पडिलेहण (प्रतिलेखन) की क्रीया में प्रमादी बननेवाला छकाय का विराधक बने ।

१२५) वो ही सत्य है, शंका रहित है, जो जिनेश्वर देवो ने कहा है - ऐसे भाव हृदय में दृढरुप से धारण करने से जीव कांक्षामोहनीय कर्म को तोडता है ।

१२६) दोषित गोचरी व्होराने-वापरनेवाला भी अगर जो उसके दोष का स्वीकार करता हो, उसकी आलोचना-प्रायश्चित लेता हो उस दोषित के प्रती उसके मन में पश्र्यातापं हो तो वह जीव आराधक है ।

१२७) साधु-साध्वीजीओ को अतिकान्त भोजन का निषेध है ।

१. कालतिक्रान्त यानि-सूर्य उगने पहले गोचरी व्होरानी ।

२. क्षेत्राति क्रान्त-नवकारशी की बहोराई हुई गोचरी शाम को चोविहार के वक्त वापरनी ।

३. मार्गातिक्रान्त-जिस स्थान से गोचरी वहोराई उससे ६ किमी. दूर जाकर गोचरी वापरनी ।

४. प्रमाणातिक्रान्त- ३२ कवल से ज्यादा आहार करने ।

प्रश्न - परिणाम कृत पच्चखाण यानि क्या ?

उत्तर - द्रव्य, घर, कवल, भिक्षा, अभिग्रह आदि की धारणा करके कीया गया पच्चखाण यानि परिणामकृत पच्चखाण ।

१२८) मन-वचन-काया कि ऋजुता (तथा अविसंवादितता) (कथनी-करनी ऐक जैसी) के द्वारा जीव शुभनाम कर्म बांधता है । और इसके विपरीत करने से जीव अशुभ नाम कर्म बांधता है ।

१२९) जो व्यक्ति ने हमें कार्य सोपा हो, वह काम पूर्ण होने के बाद वापीस वह कार्य सोपनेवाले व्यक्ति को 'कार्य पूरा हो गया' ऐसा अवश्य कहना चाहिए ।

१३०) जमाली अणगार अरस-विरस-रुक्ष आहार लेकर बाह्य रुप से उग्र चारित्र का पालन करते हुए भी आचार्य-उपाध्याय यावत संघ की निंदा अवर्णवाद करके अंत समय १५ दिन का संथारा लेकर भी पूर्व के दोष की आलोचना प्रतिक्रमण-प्रत्याखयान नहीं करने से कील्बीषीक नाम की हलके में हलकी देवयोनी में उत्पन्न हुए ।

१३१) अभ्युपगमिक वेदना यानि जो वेदना खुद ही स्वीकारते है वो उदा-केशलोचन, आतापना लेनी कायक्लेश आदि और उपक्रमिकी वेदना यानि जो उदय में आई हो जैसे की दाहज्वर (बुखार) अन्य बिमारीयाँ आदि ।

१३२) पांचवे आरे के अंत में धर्म का जो नाश बताने आया है वह, देश विरती और सर्व विरती की अपेक्षा से समजना ।

१३३) श्रावक पौषध में हो, तो प्रवचन दे सके (यदी साधु न हो, तो)

१३४) बेला (छठ्ठ) तप करके श्रमण जितने कर्म की निर्जरा करे उतने कर्म शेष (बाकी) रह जाने से जीवन अनुत्तर देवलोक में उत्पन्न होते है ।

१३५) हाथ या वस्त्र से मुख को ढककर बोली गई भाषा अनवर्ध है और बिना हाथ या वस्त्र मुख पर रखे, यूँही खुल्ले मुँह बोली गई भाषा सावद्य है ।

१३६) भगवान महावीर ने सोमिल बाह्मण के पूछने पर 'यात्रा' का अर्थ कहा कि, 'मेरे लीए तप-नियम-संयम-स्वाध्याय-आवश्यकादि योग में यतना ही यात्रा है'।

१३७) प्रश्न : पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु और वनस्पती काय के जीवो के घीसने-मारने से उन्हे कीतनी वेदना होती है ?

उत्तर : जैसे कोई तरुण या बलवान पुरुष, कोई जीर्ण-वृध्द-जर्जरित देहवाले दुर्बल पुरुष के मस्तक पर मुष्टी से प्रहार करे, तब उस वृध्द को जीतनी वेदना होवे उससे भी अधिकतर अनिष्ट वेदना धीसने-मसलने या पीसने-छेदने से इन जीवो को होती है।

१३८) चारण मुनिओ के २ प्रकार है,

१. विधाचारण मुनि २. जंधाचारण मुनि

अंतर रहीत बेले की पारणे बेला (छट्ठे) तप की तपश्चर्या करने पूर्वक पूर्वधर श्रुत के द्वारा उत्तर गुण लब्धि से कर सके ऐसा तप करने से उत्पन्न हुई विद्या चारण लब्धि के धारक मुनि को 'विद्याचारण मुनि' कहते है।

ठीक इसी प्रकार निरंतर तेले के पारणे तेले (अठ्ठम)...... (बाकी सब उपर मुताबिक) ...... वाले मुनि को जंधाचारण मुनि कहते है। ये दोनो-आकाशचारी है, यानि अपने चरण के द्वारा सूर्य किरणो का आश्रय लेकर जानेवाले होते है।

ऐसे मुनि नंदिश्वर द्वीप-पांडुकवन नंदनवन-मानुषोतर पर्वत आदि स्थानों में रहे हुए जिन चैत्यो (जिन मंदिरो को) अपनी लब्धि के द्वारा जाकर वंदना करके आते है।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है की, लब्धि का सेवन सुविहित संवेगी साधु जीवन में प्रमाद के द्वारा होता है, इसलिए यदि ऐसे मुनि लब्धि का प्रयोग करने के बाद आलोचना-प्रतिक्रमण कीये बिना काल (मृत्यू) करे तो विराधक बनते है और अपने कीए हुए लब्धि प्रयोग की आलोचना आदि करके काल करे तो आराधक है ।

१३९) साधु को उत्सर्ग से, सुर्योदय से ४ घडी बाद तक और शाम सूर्यास्त से ४ घडी पहेले (कामली काल) मे अपने स्थान (उपाश्रय) से बाहर जाना भी कल्पना नही है ।

१४०) साधु को शास्त्र का विशिष्ट ज्ञान न भी हो, तो भी जधन्य से अष्टप्रवचन माता का ज्ञान और उसके अनुरुप उत्कृष्ट आचारण करनेवाला क्षमण भी सुंदर आराधक है ।

१४१) आलोचना करनेवाले आलोचक के दोष विपरीत आलोचना -

१. आलोचना देनेवाले आचार्य की वैयावच्च करे, ताकी वो मेरे पर प्रसन्न होकर मुझे थोडी ही आलोचना (प्रायश्चित) देवे ।

२. बडे अपराधो को छोटा करके बतावे (ज्यादा दंड के भय से)

३. आचार्य जब अपराध देख ले, पकड ले, तब ही आलोचना करे ।

४. छोटे और बडे अतिचार हुए हो तो, छोटे छोटे अतिचार की आलोचना न करे.

५. छोटे से छोटे अतिचार ही आलोचे, ताकि सामनेवाले का विश्वास संपादित हो, फीर बडे अतिचार न आलोचे.

६. अति शरम से अस्पष्ट रुप से आलोचना करे ।

७. अगीतार्थ भी सुन लेवे ऐसे जोर जोर से बोलकर आलोचना करें ।

८. एक ही दोष की आलोचना अनेक साधुओ के पास करे ।

९. अगीतार्थ के पास जाकर आलोचना करे ।

१०. जो गुरु उनके जैसे ही दोष का सेवन करनेवाले हो, उनके पास आलोचना करे, ताकी समान आचरणवाले गुरु को सुखपूर्वक अपराध कह सके ।

१४२) प्रश्न : आलोचना (प्रायश्चित) देनेवाले आचार्य में गुरु में कौन से गुण होने चाहिए ?

उत्तर : (१) आचारवान ज्ञानादि पंचाचार से युक्त सुंदर संयम पालनेवाले ।

२) आधारवान - आलोचना लेने आए हुए के अपराध को बराबर सुनकर अवधारनेवाले आए हुए

३) व्यवहारवान - आगम, श्रुत आदि पांच व्यवहार युक्त व्यवहार कुशल ।

४) अपव्रीडक - शरम से अतिचार छूपानेवाले को विविध वचनो से शरम दूर कराके उसके सही आलोचना करानेवाले

५) प्रकुर्वक : आलोचित अपराध में प्रायश्चित दान से विशुद्धि कराने में समर्थ ।

१४३) अभ्यंतर रुप से कार्मण शरीर को प्रायः तपाने से सम्यग् दृष्टि के द्वारा ही मात्र स्वीकृत है उसे अभ्यंतर तप कहते है ।

६. ज्ञाता धर्मकथा सूत्र

१४४) जैसे संयम में स्खलित होनेवाले मेघमुनि को भगवान महावीर ने निपुण वचनो से स्थिर कीये ऐसे ही संयम में प्रमादी-स्खलित होनेवाले शिष्य को आचार्य निपुणता से पुनः स्थिर करे।

१४५) कोई व्यक्ति संसार वृध्दिकर कर्म (द्रीअर्थीबाते) की बात करे तो साधु-साध्वीयाँ को उस स्थान का त्याग कर देना चाहिए या कान बंद कर देने लेकिन ऐसी बात सुननी भी साधु-साध्वीयों के लीए कल्पनीय नहीं है।

१४६) उत्तम पुरुष (वासुदेव -बलदेव-चक्रवर्ती आदि) अपूतिवचन होते है यानि एक बार बोले, जबान देवे, फीर कीसी भी संयोग मे फीरे नहीं।

१४७) लंबे शिथीलपणा सभर दिक्षा पर्याय से भी छोटी लेकिन जिनाज्ञा मुताबीक अच्छा दिक्षा पर्याय ज्यादा उचित है। (पुंडरीक-कंडरीक के उदाहरण की तरह)

७. उपासक दशांग सूत्र

१४८) आनंद श्रावक - इन्होने भगवान के पास से जब श्रावक के १२ व्रत अंगीकार कीये तब भोगोपभोग के पच्चखाण इस प्रकार से कीये की,

१) गंध काषायीक अंगपोछना (टुवाल) के अलावा त्याग, (लाल सुगंधी टुवाल)

२) मधुर आँवले सिवाय के बाकी सब फल का त्याग और शतपाक और सहस्त्रपाक तेल अलावा बाकी सब तेल का त्याग

३) सुगंधी गंध चूर्ण (सुगंधी आटा) (शरीर पर लगाके घीसने के लीए) को छोडकर बाकी सब त्याग

४) ८ घडो (मीट्टी के) पानी से ज्यादा विशेष पानी से स्नान का त्याग

५) सूत के वस्त्र के अलावा के वस्त्र का त्याग और अगर-कुंकुम और चंदन के अलावा अन्य विलेपन का त्याग

६) कमल का फुल, और १ मालती फुल की माला सिवाय के पुष्प का त्याग

७) कोमल कर्णेचक और मेरे खुद के नाम की अंगुठी के अलावा अन्य सारे अलंकारो (आभूषण) का त्याग और (लेबान) अगर और तुरुष्क धूप के अलावा अन्य सारे धूप का त्याग

८) १ काष्टपेय (घी से तली हुए चावल की प्रवाही पदार्थ) को छोडकर बाकी त्याग

९) घी से युक्त घेवर को छोडकर अन्य सब मीठाईयों का त्याग

१०) कर्मल चावल (बासमती चावल) को छोडकर बाकी सब चावल का त्याग

११) दाल-वटाणे और मुँग के रस (दाल) को छोडकर बाकी दाल का त्याग, (१२) शरद ऋतु के गाय के घी को

छोडकर बाकी सब घी का त्याग. (१३) वस्थु-स्वस्तिक और (दूधी) मंडुस्किय (दूधी के अलावा अन्य सब्जीयाँ का त्याग)

१४) बारीश के पानी के अलावा अन्य सभी जल का त्याग और

१५) इलायची-लविंग -कपूर-कककोल और जायफल से बनी सुग्रंधी तांबुल (मुखवास) को छोडकर सब मुखवास का त्याग।

१४९) आनंद श्रावक ने १२ व्रत स्वीकारने के बाद पंदरावे वर्ष के मध्य में अपने बडे पुत्र को घर-परिवार-कुल का कारोबार (व्यवहार) सोप दीया और उसे कहां अब में विशेष रुप से धर्मध्यानमे प्रवृत्त हो रहा हुँ इसलिए अब तुम मुझे इन सब संबंधी चीजो में कुछ न पुछना - कुछ न कहेना।

१५०) जो सत्य भी यदि दुसरो के लीए घातक हो या उनके आर्तध्यान का निमित्त हो, संयम का बाधक या लोकनिंदनीय हो तो वह सत्य भी नही बोलना चाहिए। मौन रहेना चाहिए।

८. अंतकृत दशांग सूत्र

१५१) ६ महिने के दिक्षा पर्याय के अंत में १५ दिन का संथारा (अनशन) लेकर मुनि अर्जुनमाली मोक्ष में गए।

१५२) राजगृही नगरी की बहार आया हुआ विपुलाचल पर्वत पर से अईमुत्ता के जैसे असंख्य मुनि मोक्ष में गए है।

९. अनुत्तर रोववाई सूत्र

१५३. संसृष्ट (झुठेहाथ से दिये हुए) उज्झितधर्मा (फेंक देने योग्य) अन्य कोई जीसे लेने की भी इच्छा न करे ऐसे शुध्ध ओदन (भात-चावल) से मुझे छठ्ठ (बेले) के पारणे आयंबिल करना ऐसा संकल्प धन्ना अणगार ने कीया ।

१५४) १४000 साधुओ में सर्व श्रेष्ठ, स्वयं भगवान महावीर के द्वारा प्रशंसित धन्ना अणगार के शरीर का वर्णन इस प्रकार है ।

भूख से रुक्ष हुए शरीर में खून मांस बीलकुल नाममात्र, सूखी हुई त्वचा (चमडी), हड्डीयाँ दीखे और गीन सके ऐसी छाती-कमर (पीठ) आदि की पसलीयाँ, पतली भुजाएँ (बाहु), सूखे होठ-मुँह, सीर्फ हड्डियाँ ही बची हो ऐसा शरीर, अंदर गया हुआ पेट और आँखे मुरजायी हुई, लेकिन तप तेज से दिप्त चेहरा, लटकते हुए हाथ, कंपवा के जैसे कांपता हुआ पूरा शरीर, इस प्रकार धन्ना अणगार अंत में, व नौ महिने का दिक्षा पर्याय पालकर विपुलाचल पर्वत पर १ महिने का संथारा (अनशन) करके सर्वार्थ सिध्ध विमान में उत्पन्न हुए ।

१०. प्रश्न व्याकरण - सूत्र

१५६) असत्य (जूठ) बोलने का फल-अल्प सुख, बहु दुःख, महाभय, प्रगाढ कर्मबंध और दुर्गति

१५७) अदत्तादान (चोरी) का फल = परिचितो में अप्रीतीकारक, अपयश, अधोगति और लडाई का कारण है ।

१५८) चोर के सात प्रकार - १. चोरी करनेवाला २. चोरी करानेवाला ३. चोरी की सलाह देनेवाला ४. चोर को गुप्त भेद बतानेवाला ५. चोरी का माल कम किंमत में खरीदनेवाला ६. चोर को भोजन पानी देनेवाला ७. चोर को स्थान देनेवाला.

इस सातो को शास्त्र में चोर कहा गया है ।

१५९) चोरी के प्रकार -

१. तु डर मत, मैं सब संभाल लुंगा इत्यादी बोलकर चोर को प्रोत्साहन देना ।

२. चोर मिले तब उसका कुशल प्रेम (हालचाल) पूछना ।

३. चोर को चोरी के लिए हाथ आदि से संकेत देना ।

४. राज्य का कर (टॅक्स) न भरना ।

५. चोरी करते चोर को उपेक्षा बुध्धि से देखना (देखा अनदेखा करना)

६. चोर को पकडने आए हुए को उल्टा मार्ग बताना ।

७. चोर को शय्या देना (स्थान देना)

८. चोर के पैर के निशान मीटा देना ।

९. चोर को खुद के घर में छुपने की अनुमति देना ।

१०. चोर से हाथ मिलाना, नमस्करादि सन्मान देना ।

११. चोर को बैठने के लीए आसन देना ।

१२. चोर को छुपाने में सहायता करना ।

१३. चोर को मिष्टान्न-पकवान आदि खिलाना ।

१४. दूर से थक कर आए चोर को गरम पानी, तेल आदि देना ।

१५. चोर को रसोई बनाने के लिए अग्नि देना ।

१६. चोर को शीतल जल आदि प्रवाही पदार्थ देना ।

१७. चोरी करके लाए हुए सामान को बांधने के लिए रस्सी आदि सामाग्रीयाँ देना यह सब चोरी के प्रकार है । यहाँ एक बात ध्यान रहे की अगर यह सब जानबुज के सब पता होने पर भी यदि करे तो चोरी है, लेकिन अनजान पने से या अज्ञानता से करे तो निरअपराधी है ।

१६०) साध्वीजी के शील का घातक, मंदिर के देवद्रव्य (धन) का भक्षण करनेवाला, जिनप्रवचन का उत्सूत्र प्ररुपक (निंदक) और मुनि हत्या करनेवाला जीव अपने बोधिबीज को जलाकर दुर्लभ बोधी और अनंत संसारी बनता है ।

१६१) अति विषय लालसा से परस्त्री गमन या परपुरुष गमन करनेवाले जीव दुसरे भव में 'नपुंसकपणे' को प्राप्त करते है ।

१६२) ज्यादा जल्दी भी नहीं और ज्यादा धीरे भी नहीं- इस प्रकार आहार खाना चाहिये ।

१६३) प्रश्न - संख्या दतिक गोचरी यानि क्या ?

उत्तर - एक बार पात्रे में आहार डालना यानि- एक दत्ति.

इस प्रकार ५-८-१०-१५-२० संख्या का धारा हुआ प्रमाण मुताबिक पात्रें में आहार लेकर वापरना यानि दत्तिक गोचरी ।

१६४) सत्यवादी के व्रत सत्य के प्रभाव से आये हुए संकट-विघ्न-आपतियाँ भी दूर हो जाती है, उस समय देवता आकर के सत्यवादी की सहायता - रक्षण करते है ।

१६५) जो थोडासा भी भयभीत है, उसे ही भूत-प्रेत आदि परेशान करते है, जो अभय निर्भय है, उसे नहीं ।

१६६) साधु के आगमन के निमित्त से जिस उपाश्रय का सफाई (धुलाई) रंग रोगान, मच्छर भगाने के लिए अग्नि का धुँआ या ऐसा कार्य होता हो वह दोष युक्त स्थान में साधु न ठहरे।

१६७) साधु को सब्जी और दाल की अधिकतावाला भोजन नहीं करना चाहिए।

१६८) रस्ते पर चलते चलते नीचे गीरे हुई कोई वस्तु भी लेनी, बिना पूछे लेनी साधु या श्रावक को नहीं कल्पें।

१६९) एक ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना से सभी व्रतो की आराधना होती है, और एक इसीकी विराधना से सभी व्रतो की विराधना होती है।

१७० सामने से आमंत्रण मिलने पर भी जो ब्रह्मचर्य से पतित होता नहीं है, उन्ही का स्वाध्याय, ध्यान, ज्ञान, आत्मबोध, तपश्चर्या सफल है, सार्थक है।

१७१) जहाँ जहाँ चित्त की भ्रांती होवे, मन में श्रृंगार रस पैदा हो, ऐसे स्थानो, जगहो का ब्रह्मचारी को त्याग करना चाहिए।

१७२) प्रश्न – जिन शासन का श्रमण (साधु) कैसा हो ?

उत्तर – श्रुतधारक, ऋजु (सरल), आलस रहित, सर्व जगत जीव वात्सल कर्ता, सत्यभाषक, प्रवचन माता के द्वारा कर्म-ग्रंन्थी छेदक, स्वसिध्धांत निपुण, हर्षादि रहित, बाह्य-अभ्यंतरादि तप में उध्र्यमवान, इन्द्रीय दमनकर्ता, नियाणात्यागी, महाव्रत के भार को वहने में समर्थ, परिषह विजेता, अप्रमत्त विहारी, कार्योत्सर्ग में उर्ध्धकाय और शुक्लध्यान में निश्चल, जितेन्द्रीय ऐसे जिनशासन के साधु रहेवे।

१२. उववाई सूत्र

१७३) अष्टमंगल में आया हुआ श्रीवत्स-तीर्थंकर परमात्मा के हृदय का अवयव (आकार) है ।

१७४) अप्रतिहत ग्रामानुग्राम विहार यानि एक गाँव के पास में रहे हुअे दुसरे गाँव को उल्लंघे बिना उत्सुकता के अभाव रहित विहार ।

१७५) भगवान महावीर के कुछ साधु 'मोक प्रतिमा' वहन करते हुए विचर रहे - मोक प्रतिमा यानि मुत्र का प्रारंभ परठने संबंधी के अंतर अभिग्रह यह प्रतिमा गाँव के बाहर, शरद ऋतु या ग्रीष्म ऋतु में की जाती है । इसमें ६-७ उपवास की तपस्या कीये भी यह मोक प्रतिमा का स्वीकार कीया जा सकता है ।

१७६) मोक प्रतिमा-यानि शरद ऋतु के प्रारंभ मे या ग्रीष्म ऋतु के अंत में गाँव-नगर के बाहर वन-पर्वत या गुफा में यह धारण करनी कल्पें, इसमें साधु को खुद का मुत्र खुद ही दिन में जीतना आवे उतना पिना होता है, रात को नहीं । उपवास से करे तो ७ दिन तक और आहार करके फीरे तो ६ दिन तक यह मोक प्रतिमा का वहन होता है । यह लघुमोक प्रतिमा ।

बडी मोक प्रतिमा में उपवास ८ दिन, या आहार करके करे तो ७ दिन का विधान है । इसमें कृमी रहित-वीर्य रहित-चीकनाई रहीत और रक्तकण रहित मुत्र जीतना आये उतना सब पिने का विधान है । ऐसा छेद सूत्र के व्यवहार सूत्र में बताया गया है ।

१७७) प्रश्न - अरस विरस आहार यानि क्या ?

उत्तर - अरस आहार यानि (रसरहित) हो गए जूने चावल इत्यादी का आहार, इसी प्रकार आंत-प्रांत आहार यानि जधन्य (हलके धान्य जैसे की वाल आदि का आहार)

१७८) आतापना के तीन प्रकार -

१. निष्पन्न आतापना यानि-भूमि पर, सीधा सोये, उल्टा सोये या दाही या बाही करवट (पर) सोये ।

२. अनिष्पन्न आतापना - विविध आसन में रहना जैसे की गोदोहिकासन, उत्कुटासन, वीरासन आदि ।

३. उर्ध्वस्थानातापना यानि - हाथ उपर रखने, एक पैर पर खडा रहना, समान पैर पर खडे रहना आदि ।

१७९) छेद, प्रायश्चित यानि पांच-पांच दिवस के क्रम से दिक्षा पर्याय का छेद करना ।

१८०) बाहर निकलते समय 'अष्टमंगल' के दर्शन करके निकलने से विघ्न टल जाते है ।

१८१) अष्टमंगल के नाम - स्वस्तीक, श्रीवत्स, नंदावर्त, वर्धमानक, भ्रद्रासन, कलश, मत्सययुगल, दर्पण ।

१८२) देवी देवताओने भगवान महावीर तथा गौतमादि श्रमणो के सामने 'अष्टमंगल' आलेखीत कीये ।

१८३) केशीकुमार श्रमण ने श्रावक बने हुए प्रदेशी राजा को कहा की 'पहेले तु स्मरणीय होकर अब अस्मरणीय मत बनना' अर्थात पहेले तु दुसरो को अनुकंपा दान देता था, अब जैन धर्म स्वीकारने के बाद दुसरो के दान देना बंद मत कर देना, नहीं तो हमको उससे अंतराय बंधेगी और जिनशासन की अपभ्राजना (हीलना) होगी ।

१८४) चंद्र/सूर्य/नक्षत्र और ग्रह इन चारो की मनुष्यो के उपर सुःख या दुःख को असर होती है, इस लिए जिनेश्वरो ने कहा है कि दिक्षा आदि कार्य शुभ क्षेत्र, शुभ दिशा, शुभ तीर्थ-नक्षत्र-मुहूर्त में करने चाहिए ।

अशुभ द्रव्य या क्षेत्रादि को पाकर अशुभ कर्म उदय में आ सकते है क्योंकि कर्मो के विपाक के हेतू सामान्य से पांच है ।

१. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल ४. भाव ५. भव

१८५) देवलोक के तमाम द्वारो (दरवाजो) पर अष्टमंगल होते है ।

१५. श्री पन्नवणा सूत्र

१८६) आगम को सुनकर-जानकर श्रोताजन सम्यग्ज्ञान, जीवादि तत्व से भावित बने यह इसका अनंतर फल और जानकर संसार से विरकत् बनकर संयम मार्ग में आगमानुसारी सम्यक प्रवृत्ती करके सर्व कर्मक्षय रुप मोक्ष को प्राप्त करे यह आगम वाचना का परंपर फल है ।

१८७) मनन करे वो मुनि और मान न करे वो मुनि ।

१८८) साधु के द्वारा दिक्षा छोडकर पुनः गृहस्थी बनने पर उसने ली हुई करेमि भंते की 'जावजीवं पच्चखामि' की प्रतिज्ञाभंग का बडा दोष लगता है ।

१८९) प्रश्न : देवताओ के भवन और आवास (दोनों में) क्या अंतर है?

उत्तर : जो बाहर से गोल, अंदर से समचोरस, नीचे के भाग से कमल की कर्णीका (पंखुडी) आकार के रहे उसे भवन कहेते है और जो शरीर प्रमाण बडे मंडपवाले, विविध मणी-रत्न आदि दिपक की रोशनी से सुशोभित हो उसे आवास कहेते है । नरकावास बाहर से चोरस अंदर से गोल है ।

विविध प्रकार के पर्वत, गुफा, वन, नगर, आदि आवासो में अंतर (आश्रय) करनेवाला जीव को व्यंतर कहेते है ।

व्यघात को आश्रित बादर अग्नि अति स्निग्ध या अति रुक्ष कालमें नहीं होता । यहाँ अवसँर्पीणी काल के १-२-३- आरे में अति स्निग्ध काल और ठठ्ठे आरे में अति रुक्ष काल है, इसलिए अग्नि नहीं है ।

१९०) कुशल (अच्छे) कार्य में भी गुरु की आज्ञा बिना प्रवृत्ती नहीं करनी क्योंकि इससे विनय गुण की हानी होती है ।

१९१) जो अति दु:खी होते है वह अकसर तेज श्वास लेते है, श्वास छोडते है, जो सुखी (मन-चित से प्रसन्न है) वह धीरे धीरे साँस लेते-छोडते है जैसे की नारकी के जीव निरंतर साँस लेते-छोडते है और देवलोक के जीव धीरे धीरे। व्यवहार में भी देखा गया है की कामवासना या क्रोध के समय जीव तेज साँस लेता-छोडता है, और शांति चित्त बैठा रहे, तब साँस धीरे चलती है । यानि साँस 'शांति' का कारण होती है ।

१९२) जो तेज साँस लेते/छोडते है वह प्राय: ज्यादा आहारी होते है और जो धीरे-धीरे (अल्प) साँस लेते/छोडते है वह प्राय: अल्प आहारी होते है ।

(उदा- नरक के जीव-वैमानिक या स्वार्थ सिध्ध के जीव) (या कषायी मनुष्य-श्रमण/मुनि)

१९३) पित्त प्रकोप से क्रोध अति बढता हुआ बनता है, ब्राह्मी औषध रुप द्रव्य ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम का कारण है वैसे ही मदिरापान, ज्ञानावरणीय के उदय का और दहीं निरक्षररुप दर्शनावरणीय के उदय का कारण है ।

दस प्रकार की सत्य भाषा है, उसमें स्थापना सत्य यानि जिसकी स्थापना हुई हो, उसका नाम बोलना जैसे की, अरिहंत प्रतिमा की स्थापना को अरिहंत बोलना-मानना-अन्यथा मृषावाद का दोष लगे ।

१९४) उन्मार्ग उपदेशक, मार्ग नाशक, गूढ़ हृदयी, मायावी, शठ स्वभावी, शल्य युक्त जीव को तिर्यंय गती का आयुष्य बांधता है।

१९५) जोर-जोरसे हँसना, गुरु आदि के साथ निष्ठुरताएँ या वक्रोक्ति से स्वेच्छापूर्वक बोलना, कामकथा करनी या उपदेश देना, स्वप्रशंसा करनी यह सब कंदर्प वचन है । इसका त्याग करना चाहिए ।

१९६) मोक्षभिलाषी साधु को ज्योतिषशास्त्र, जंबू-द्विपादि खगोल आदि ज्ञान शीखने की क्या जरुरत है ? - ऐसा बोलना भी श्रुतज्ञान का अवर्णवाद (निंदा) है।

१९७) जिसके द्वारा मनमें आर्तध्यानादि अशुभ चिंतन चले, इन्द्रीयो का नाश होवे, और योग क्षीण होवे - ऐसा अशक्य तप करने का जिनेश्वरोने निषेध किया है।

१९८) पूर्व भव के शरीर, शस्त्र, अधिकरण आदि को जो वोसिराया न हो, तो उसके द्वारा होनेवाले कर्मबंध का दोष जीवो को इस भव में भी लगता है ।

इसलिए अनुपयोगी सब चीजो को वोसीराना (त्यागना) अत्यंत जरुरी है ।

१९९) अभव्य जीवो को तीर्थंकर अप्रिय लगते है ।

प्रश्न : गैवेयक और अनुतर विमानवासी देव मैथुन का सेवन नहीं करते है तो उन्हे ब्रह्मचारी क्युं नहीं कहा ?

उत्तर : क्योंकि देवगति में अविरती-चारित्र रुप पच्चखाण का अभाव है ।

२००) केवल ज्ञानी, केवली समुद्धात करने से पहेले 'आवर्जीकरण' करते है, आवर्जीकरण यानि शुभ मन-वचन-काया रुप व्यापार के उपयोग पूर्वक आत्माको मोक्ष सन्मुख जोडने की क्रिया । कीतने ही केवलज्ञानी केवली समुद्धात करे, और कितने ही नहीं भी करे, परंतु सब केवलज्ञानी आवर्जीकरण अवश्य करते है।

२०१) केवली समुद्धात करने से पहेले केवलज्ञानी खुद के पास रहे हुए आसन-संथारा (शय्या) पाट आदि वापीस देवे (जिसके हो उसे) फीर योग का निरोध-शैलेशीकरण आदि करते है ।

१६-१७ सूर्य-चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र

२०२) शिष्य सम्यक् प्रकार से शास्त्र पढा हुआ ज्ञानी रहे तो भी गुरु की आज्ञा मिलने पर ही तत्व का उपदेश अन्यलोगो को देना, अन्यथा नहीं ।

१८. श्री जंबूद्विप प्रज्ञप्ति सूत्र

२०३) इस सूत्र में भी शाश्वती प्रतिमा के पीछे छत्रधारी प्रतिमा का उल्लेख आया है ।

२४. चउशरण पयन्ना सूत्र

२०४) चार शरण का स्वीकार, दृष्कृतगर्हा और सुकृत अनुमोदना बारम्बार करनी चाहिए, क्योंकि यह मोक्ष का कारण है ।

२०५) जिनभक्ति से रोमांचित होकर, आनंदाश्रु से, गदगदीत स्वर से, दोनो हाथ की अंजली जोडकर मस्तक पर रखकर अरिहंत का शरण स्वीकारना चाहिए ।

२५. आउरपच्चखाण पयन्ना सूत्र

२०६) जो साधु गुरु वचन विरोधी, ज्यादा मोहवाले, शबल दोष युक्त, कुशील, असमाधि से मरे, वह अनंत संसारी बने.

२०७) मृत्यु के समय भी जिनेन्द्रोने बताए हुए उपकरण से अधिक उपकरण रखे, न वोसिरावे, वह जन्म मरण की परंपरा को बढाता है ।

२०८) चिरकाल के अभ्यास के बिना (पूर्व में कभी उपवासादि तप न कीया हो,) अकाले अनशन करनेवाले पुरुष मृत्युसमयमें पूर्वकृत कर्म से योग से पीछे हटते है ।

२०९) मृत्युकाल के समय में अति समर्थ चित्तवालो को भी १२ अंगरुप श्रुतज्ञान का चिंतन शक्य नहीं है, इस लिए वीतराग मार्ग के पद रुप १ श्लोक (नवकारमंत्र) का भी बारम्बार वैराग्य पूर्वक चिंतन-स्मरण करके मरना चाहिए ।

२६. श्री महा पच्चखाण पयन्ना सूत्र

२१०) अंत समय तक भी जो अपने पापो को गुरु के पास लज्जा-गारव-बहुश्रुतत्व के कारण पापो को आलोचकर प्रायश्चित लेता नही है, वह श्रुत समृद्ध होते हुए भी आराधक बनता नही है।

२११) जिसने पूर्व समय में अपनी पांचो इन्द्रीयो का निग्रह नही किया है, परिषदो को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं किये है, वो ही आत्मा अपने अंत समय में मृत्यु से डरता है । भयभीत बनता है ।

२१२) जिससे आत्मा को वैराग्य हो, वह वह सब कार्य आदर के साथ करने ।

२१३) अंत समयमें जिस को वेदना (पीडा) उत्पन्न हुई हो वह ऐसा चिंतन करे की इससे अनंत गुणी वेदना मैने नरक में अनंतीबार मजबुरी से सहन की है, उसके सामने यह कुछ भी नहीं, अब मुझे समता से सहन करनी है, ऐसा कुछ चिंतन करके कोई-कुछ आलंबन लेकर मुनि-वेदना (पिडा) के दुःख को सहन करे ।

२७. भत्तपरिज्ञा प्रकीर्णक सूत्र (पयन्ना)

२१४) घृती-बल रहित, अकाल मृत्यु (सोपक्रमी जीव) को प्राप्त करनेवाले वर्तमानकालीक साधु को निरुपसर्ग मरण ही योग्य है ।

२१५) कैसे अनशन कराया-कीया जाए उसकी विधि इस आगम में बताई गई है ।

२१६) सब से पहेले (१) गुरु के पास आकर आज्ञा लेवे ।

(२) गुरु आज्ञा देवे तो त्रिविध आहार के जावजीव त्याग के पच्चखाण लेवे । (अनशन की आराधना से उसको कल्याण होगा । आर्तध्यानादि नहीं होगा । वह दिव्य निमित्त से ज्ञानाबल से जानकर आचार्य आज्ञा देवे, नहीं तो नही देवे)

(३) पच्चखाण देने से पहेले पेट की शुध्दि के लिए 'समाधिपान' पिलावें, उसमे पहेलें पानी पिना और थोडा थोडा विरेचन कराना, फीर इलायची–तज–केसर–तमालपत्र और शक्कर इन पांचोयुक्त दूध एकदम गरम करके फीर ठंडा करना, फीर पिलाना, फीर फोफलादि मधुर औषध का विरेचन कराना, ताकि उदराग्नि (पित्त प्रकोप) आदि शांत हो जावे.)

(४) फीर निर्यामक आचार्य सकल संघ से निवेदन करे की एक साधु संथारा ग्रहण कर रहे है, इसलिए उनका संथारा निरुपसर्ग पूर्ण होवे ऐसी मंगल कामना हेतू चतुर्विध संघ कार्योत्सग करे, फीर सामूहिक चैत्यवंदन करने के पश्चात चोविहार अनशन, या तिविहार अनशन (समाधि रहे इस हेतू)–के पच्चखाण करावे, फीर क्रमशः योग्य समय अवसर पर पानी का भी त्याग करावे.

(५) फीर अनशन आराधक तपस्वी हाथ जोडकर सकल चतुर्विध संघ की यावत् ८४ लाख जीवायोनी को खमावे.

(६) फीर महाव्रतो का पुनः उच्चारण गुरु करावे तथा अनशन योग्य हितशिक्षा फरमावे.

(७) मन को शुभ ध्यान में स्थिर करने के लिए आचार्य उस तपस्वीको नवकार मंत्र के सूत्र और अर्थ के चिंतन में स्थिर होने की प्रेरणा दे ।

(८) इस प्रकार अनशनी जीव आगे बढे, कोई अशुभ कर्मोदय से विचलित होवे तो आचार्य उसे चर्तुविध संघ के समक्ष ली हुई अनशन की प्रतिमा पुनः याद दिलावे, पूर्व में उपसर्ग सहन करके केवली-मोक्षगामी बननेवाले जीवो के जीवनचरित्र सुनाकर उसे पुनः स्थिर करे ।

२८. श्री तंदुल वेयलिय पयन्ना सूत्र

२१७) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त कोई गर्भस्थ जीव, लब्धि प्रभाव से गर्भ में ही धार्मिक वचन सुनकर, तीव्र धर्मानुरक्त् भी बन सकता है ।

२९. संथारा पयन्ना सूत्र

२१८) जिसके संयमादि योग सिदाते हो, जरा से परेशान हो, वह मात्रभूत बनकर गुरु के पास आलोचना करके जो यदि संथारा करे तो उसका संथारा विशुध्ध है ।

२१९) अनशनव्रती साधु तृण शय्या संथारे पर आरुढ होकर पहले ही दिन से संख्येय भवस्थितीक कर्मो को प्रत्येक क्षण-क्षण में खपाता है ।

२२०) जीव वर्षाकाल में विविध तप अच्छे रूप से (सम्यक्) रुप से करके हेमंत ऋतु में संथारा करने के लिए सज्ज बने ।

२२१) जीवन पर्यंत की हुई तमाम धर्म आराधनाओ के उपर धजा-कलश-शिखर-मुगुट समान संथारा अनशन व्रत है ।

२२२) अष्टमंगल से भी संथारा अधिक उत्कृष्ट मंगल है ।

२२३) जिस प्रकार सभी व्रतो में ब्रह्मचर्य व्रत मुख्य है, पर्वत में मेरु पर्वत, सागर में स्वयंभूरमण, तारो में चन्द्रमा मुख्य है, उसी प्रकार सर्व शुभ क्रियाओ में संथारा मुख्य है ।

३०.१ गच्छाचार पयन्ना सूत्र

२२४) स्वच्छंदाचारी, उपकरण में मुर्च्छित, अपकाय के हिंसक, आरंभ में प्रवृत्त करानेवाले, मूल-उत्तर गुण भ्रष्ट, सामाचारी विराधक, नित्य आलोचना नही करनेवाले, निद्रा विकथा परायण आचार्य शास्त्र में अधम कहे गए है ।

२२५) आलोचना (प्रायश्चित) स्वगच्छी (गीतार्थ) आचार्य के पास या उनके अभाव में उपाध्याय के पास, अभाव में पन्यासजी के पास अभाव में स्थवीरो के पास, अभाव में गणावच्छेदक के पास, उनके अभाव में परगच्छिय गीतार्थो के पास, उनके अभाव में गीतार्थ-लेकीन दिक्षा छोडकर गृहस्थ बने हो उनके पास, उनके अभाव में सम्यकत्व भावीत देवता के पास, या उनके अभाव में जिन प्रतिमा समक्ष या उनके अभाव में पूर्व दिशा-इशान सन्मुख अरिहंत- सिध्ध साक्षी से भी अनिवार्य रुप से लगे हुए दोष, अतिचार की सुक्ष्म आलोचना करनी चाहिए ।

लेंकिन, सुसाधु-साध्वीजीओ को निर्मल संयम पालने के लिए आलोचना करनी अनिवार्य है ।

२२६) ३६ गुणयुक्त आचार्य भी दुसरे गीतार्थ आचार्य के पास अपनी आलोचना करे।

२२७) आचार्य नए उपकरणो का मूर्च्छारहित होकर संग्रह करे, पुराने उपकरनो का संरक्षण करे।

२२८) हे श्रमाश्रमण ! आप जैसे उत्तम पुरुष भी प्रमादाधीन होकर यदि ऐसा आचरण करेंगे तो इस संसार में हमारे लिए और कौन आलंबन होगा ? इत्यादि वचन मधुर रुप से कहकर शिष्य भी गुरु को उचित बोध करे।

२२९) गुरु सभी कार्यो को अविपरित (झीळींळींश) देखे।

२३०) जो आचार्य-उपाध्याय विधिपूर्वक प्रेरणा देकर शिष्यो को सूत्र-अर्थ पढावे वह धन्य है, जिनेश्वरोने बताए हुए आचार मार्ग को यथार्थ रुप से बतावे वह आचार्य, तीर्थंकर समान है।

२३१) भ्रष्ट आचारी साधु की उपेक्षा करनेवाले आचार्य, जिनमार्ग के नाशक है।

२३२) गुरुकुलवास (गच्छ) में रहने से, सारणा-वारणा-प्रेरणादि समय-समय पर मिलती रहेने से, जीव को विपुल कर्म निर्जरा होती है।

२३३) साध्वीजी की लाई हुई गोचरी साधु को कल्पें नहीं।

२३४) उपाश्रय को झाडू से साफ करना नहीं कल्पे।

२३५) साधुओ की गोचरी मांडली में साध्वीओं का प्रवेश सर्वथा वर्ज्य है।

२३६) मुनि वस्त्र-उपकरण-मुमुक्षु आदि का क्रय विक्रय करके (धन से लेन देन) संयम भ्रष्ट न बनें।

२३७) जिसके पास से विद्या सिखी हो (ज्ञान प्राप्त कीया हो) उनकी आशातना अविनय करनेवाले को विद्या का फल नहीं मिलता है।

२३८) जो साधु-साध्वी उग्र तपस्या करते हुए भी गुरुआज्ञा का पालन नहीं करते या अवहेलना करते है, वह अनंत संसारी बनते है।

२३९) उत्तम शिष्य की परिक्षा योग्य विशिष्ट लक्षण जो मुमुक्षु सत्व गुण से युक्त, मधुर भाषी, कीसीकी चाडी-चुगली नहीं करनेवाला, अलोभी, जिनशासन का अनुरागी, श्रध्दा से परिपूर्ण, विकार रहित, विनयप्रधान, देश-काल की समयज्ञ जाननेवाला, अल्पनिंद्रावान हो, वह कुशल शिष्य बनने योग्य है।

२४०) जो श्रुतज्ञान में कुशल हो लेकिन अविनीत अहंकार युक्त हो तो वह प्रशंसनीय नहीं है।

२४१) क्रिया संपन्न ज्ञानी जीव ही भवसमुद्र कुशलता से तर सकता है।

२४२) जिस प्रकार वैधक ग्रंथो के अभ्यास के बिना वैध व्याधि की चिकित्सा को कुशल रीत से नहीं जान सके, उसी प्रकार आगमो के ज्ञान बिना मुनि चारित्र शुध्दि के उपायो को कुशल रुप से जान सकता नहीं है। इसलिए तीर्थंकर प्ररुपीत आगम शास्त्रो के अर्थ पूर्वक के अभ्यास करने में सदा उद्यमशील बनना चाहिए।

२४३) ज्ञानाभ्यास की रुची वाले को कदाचित बुध्धि न हो तो भी उद्यम करना चाहिए, क्योंकी बुध्धि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोमशम् से ही प्राप्त होती है। और सम्यक ज्ञान की प्रवृत्ति में जुडने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है।

२४४) जीस एक पद के भी श्रवण-चिंतन से वैराग्य की वृध्धि होती हो तो वह भी सम्यक ज्ञान है।

२४५) पूर्वो में शास्त्रोक्त विधि अनुसार विगई त्याग, उणोदरी, उग्र तप, परिषह जय करके शरीर को कृशकाय करनेवाला मुनि अंत समय (मृत्यु समय) अनशन (संथारे) की आराधना निर्भय होकर कर सकता है।

२४६) कुछ न्युन पूर्व क्रोड वर्ष के चारित्र वाला मुनि भी कषाय कलूषित चित्तवाला बनकर १ मुहूर्त में हार जाता है।

३१. श्री गणिविज्जा पयन्ना सूत्र

२४७) रवि = मंगल=शनिवार से बडी तपश्चर्या की शुरुआत तथा अनशन (संथारा) करना। विहार तिथी विचार-एकम में लाभ नहीं, दुज-विपत्ति, तीज-अर्थ सिध्द, पंचमी - विजय आण रहे, सप्तमी में बहुत गुण है, दशमी को प्रस्थान करने से मार्ग निष्कंटक (उपद्रव रहित) बने, एकादशी को-आरोग्य में विघ्न रहितता, तेरस - जो अमित्र बने हो वह वश होवे।

२४८) प्रथम विहार, छठ्ठ, आठम, नोम, बारस, चौदस, पूनम-अमावस दोनो पक्ष में वर्ज्य है।

२४९) योगसाधना - विशिष्ट स्वाध्याय आदि के लिए पुष्य-हस्त = अभिजीत और अश्विनी नक्षत्र में कार्य प्रारंभ करना।

२५०) "उत्साहो प्रथम मुहूर्त" कहकर इस सुत्रकार ने कहा है की, कोई भी कार्य करने से पहेले उत्साह होना चाहिए, उत्साह को सर्व प्रथम मुहूर्त बताया गया है, तथा तीर्थ यात्रादि प्रसंग में तो उत्साह होना ही चाहिए।

२५१) दिवस आदि की संपूर्ण शुध्दी न हो, और उस दिन कार्य करना अत्यंत जरुरी लगे तो उत्तम योग देख लेना, ऐसे प्रसंग में अगर रवियोग हो तो दिवस की अशुध्धि जरा भी नुकसान करती नहीं है।

२५२) रविवार को रविपुष्प अमृत योग-जप और साधना के लिए श्रेष्ठ है तथा गुरुवार के पुष्यामृत योग वेपार और आर्थिक लाभ के लिए विशेष उपयोगी है।

३२. श्री देवेन्द्रस्तव पयन्ना सूत्र

२५३) श्रावक जीवाजीवादिक नौतत्व का ज्ञाता होना ही चाहिए। तो ही वह सच्चा और पक्का श्रावक बन सके।

३४. श्री नीशीथ सूत्र

२५४) अकार्य (पाप) करना दुष्कर नहीं है, लेकिन अकार्य (पाप) का प्रायश्चित लेना दुष्कर है।

३५. श्री बृहद कल्प सूत्र

२५५) उपशांतता (उपशम) ही संयम जीवन का सार है।

२५६) साधुओ को गृहस्थ के घर से लाई हुई कोई भी वस्तु (वस्त्र-पात्र-केवल) आदि पहले आचार्य (गुरु) के चरणों में रखकर, फीर उनकी आज्ञा लेकर अपने पास रखनी-उपयोग करनी कल्पती है।

२५७) साधु-साध्वी, जहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृध्धि होती हो, उसी क्षेत्र में विचरना कल्पें।

२५८) नूतन दिक्षितो को १ साल तक नए वस्त्र ग्रहण करने नहीं कल्पें।

२५९) आचार्यादि का प्रथम विहार, मुहूर्त देखकर करने का विधान है।

२६०) ग्लान (बिमार साधु) की सेवा, तीर्थंकर की सेवा करने समान है।

२६१) शय्यात्तर को उसकी वस्तु (पाट-पाटला इत्यादी) वापीस देकर ही ग्रामान्तर विहार करना कल्पें।

२६२) साधु कलह करके जबतक उपशांत न बने तब तक उसे उपाश्रय के बाहर कीसी भी कारण से जाना-आना न कल्यें।

३६. श्री व्यवहार सूत्र

२६३) 'इतने मेरे दोष है, और इस भाव से, इतनी बार इसका सेवन किया है' ऐसा बोलकर प्रायश्चित करना चाहिए।

२६४) सत्य प्रतिज्ञा लीए हुए साधुओ के सत्य कथन के उपर ही प्रायश्चित का व्यवहार निर्भर होता है।

२६५) विगई वापरनेसे पहेले स्थवीर (गुरु) की अनुमति (आज्ञा) मिलनी आवश्यक है ।

२६६) जो कोई साधु को अपने स्वजन के घर गोचरी जाना हो, तो स्थवीरो की अनुमती मीलने पर ही बहुश्रुत-आगमज्ञ साधु के साथ संघाटक रुप से जाना कल्पे ।

२६७) शय्यात्तर की अनुमति बिना कोई चीज अन्य स्थान में ले जानी नही कल्पे ।

२६८) विहार के स्थान में उस मकान में **'जहाँ मुख्य स्थवीर आज्ञा देवे'** उस जगह मुनि बैठे-स्वाध्याय करे-शय्या करे ।

२६९) आचार्य को एकस्थान में स्थायी रहेना न कल्पे । आचार्य शुध्द उच्चारण वाले होने चाहिए । आचार्य आदेश वचनी होने चाहिए।

आचार्य वृध्द और बिमार साधु की व्यवस्थित वैयावच्च व्यवस्था करनेवाले होने चाहिए । आचार्य क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को भी दूर करनेवाले होने चाहिए ।

आचार्य, यदि परस्पर साधूओं में कलह होवे तो बिना पक्षपात कीये मध्यस्थ भाव से क्षमापना और उपशमन करानेवाले होने चाहिए ।

२७०) प्रतिमाधारी भिक्षु को मौन में भी ४ प्रकारकी भाषा बोलनी कल्पे ।

१. याचनी = आहार-वस्ती की याचना करने के लिए ।

२. पृच्छनी = स्वाध्यायादि से उद्भावित प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए ।

३. अनुज्ञापनीय = शय्यात्तर से अनुज्ञा लेने के लिए ।

४. पृष्ट व्याकरणी-कीसी के द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए ।

२७१) श्रेणीक महाराजा और चेल्लणा राणी के 'रुप और भोग' को देखकर कुछ साधु-साध्वीयोने नियाणा बाधा, फीर भगवान महावीर के उपदेश से इस पापरुप अतिचार की आलोचना (प्रायश्चित) कीया ।

२७२) नियाणा करनेवाला जीव नियाणा पूरा करके अनंत इच्छावाला, महाआरंभी महापरिग्रही बनकर नरक में उत्पन्न होकर अंत में दुर्लभबोधि बनता है । नियाणे नौ प्रकार के होते है ।

३८. श्री जीतकल्प सूत्र

२७३) प्रायश्चित से ही चारित्र की विशुध्दि होती है । प्रायश्चित के दस प्रकार है ।

१. आलोचना २. प्रतिक्रमण ३. तदुभय ४. विवेक ५. कायोत्सर्ग ६. तप ७. छेद ८. मूल ९. अनवस्थाप्य १०. पारांचित.

१. आवागमन संबंधी १०० कदम उपाश्रय से बाहर जाने आदि के संबंधी गीतार्थ आचार्य मिले उनके पास आलोचना प्रायश्चित लेना ।

२. गुरु की आशातना, दशविध सामाचारी के पालन में प्रमाद, विकथा आदि में प्रतिक्रमण प्रायश्चित आवे ।

३. आहार, उपधि उपकरण आदि अविधिपूर्वक परठना यानि विवेक प्रायश्चित.

४. गमन-आगमन, नाव के द्वारा नदी उतरनी, सावद्य - निरवद्य स्वप्न आदि में कार्योत्सर्ग प्रायश्चित आवे.

जैसे की मल-मूत्र परठने पर २५ श्वासोश्वास (१ लोगस्स) काउसग्ग प्राणातिपात हिंसा आदि का स्वप्न आवे को १०० श्वासोश्वास (४ लोगस्स) का काउसग्ग.

मैथुन संबंधी स्वप्न में १०८ श्वासोश्वास काउसग्ग, सूत्र के उद्देश - समुद्देश-अनुज्ञा में २७ श्वासोश्वास का उसग्ग आवे.

२७४) स्वाध्याय या गोचरी-भूमि को प्रमाजे नहीं, अयोग्य को वाचना देवे, विगई का सेवन, आदि में १ उपवास का प्रायश्चित आता है, तथा संनिधी रखने के दोष में ३ उपवास का प्रायश्चित।

२७५) क्रोध-मान में आयंबिल, माया में एकासना और लोभ में उपवास, विद्यामंत्र आदि प्रयोग में प्रत्येक दीठ १-१ आयंबिल.

साधु के शीघ्र दौडना, गीत गाने, मोर-पोपट आदि के आवाज निकालने,

जोर जोर से बोलने इत्यादि पर - १ उपवास का प्रायश्चित।

३९. श्री महानिशीय सूत्र

२७६) भवभीरु, माया रहित सत्यभाषावाले जीव को ही आलोचना देनी चाहिए।

२७७) प्रमाद से, या मैं पकडा जाऊंगा इस भय से या, आलोचना करने की शक्ति नहीं है इस भाव से, ८ मद से, ३ गारव से, दुसरों के नाम से आलोचना करने से, कीसी के पास उस प्रकार का प्रायश्चित सुनकर उस मुताबीक खुद ही प्रायश्चित करे तो आलोचना सही (सम्यक) नहीं होती है।

२७८) इरियावही कीये बिना चैत्यवंदन-स्वाध्याय-ध्यान आदि करना कल्पें नहीं ।

२७९) मैथुन संबंधी भोग का मन से कुछ मीनोटो के लिए विचार भी करे - तब तक तो असंख्याता समय और आवलिका निकल जाती है, जितने समय और आवलीका निकली उसके प्रथम समय से ही कर्म की स्थिती बांधने की शुरुवात हो जाती है इस प्रकार दुसरे, तीसरे ऐसे प्रत्येक समय यावत् असंख्यात-अनंत समय क्रमशः पसार हो जाते है तो असंख्यात उत्सपाणी-अवर्सपीणी काल पसार हो तब तक तिर्थंय-नरक की कर्म स्थिती का जीव कर्म उपार्जन कर लेता है । इस प्रकार मैथुन संकल्प भी कालचक्र में भयंकर भवभ्रमण का कारण है, यह सोचकर जीव मन से भी मैथुन की इच्छा न करे ।

लेकिन इस में आसक्त-रागांध जीव को, इसमें अति भारी दोष, व्रत खंडन, शील भंग, संयम विराधना, परलोक में दुर्गति, अनंत भव भ्रमण आदि कुछ भी दिखता नहीं है । मैथुन सेवन की इच्छा से जीव शरीर अवयव सन्मुख बने तो वह अपनी कर्म स्थिती बध्ध स्पृष्ट करे और मैथुन सेवे तो वह निकाचीत कर्म स्थिती बाधे.

२८०) साधु-साध्वी या पौषधधारी रात को कान में रुई डाले बिना सोए तो प्रायश्चित आवे ।

२८१) शायद मन में मैथुन विचार आ जाए तो उत्तम जीव उसे रोककर, साँसपर नियंत्रण करके, उस विचार के तुरंत निंदा गर्हा-आलोचना करके शुध्द हो जावे ।

२८२) जिस प्रकार हिंसा के संकल्प करनेवाले को धर्म न स्पर्शे, उसी प्रकार स्त्री संकल्प करनेवालो को भी धर्म न स्पर्शे (न रुचे) ।

२८३) अपकाय का परिभोग, अग्निकाय का समारंभ और मैथुन सेवन से जीव बोधिबीज को जलाकर दुर्लभ बोधि बनता है ।

२८४) नवकार सीखने के बाद इरियावहि सूत्र भी विधिपूर्वक सीखना क्योंकि चैत्यवंदन, प्रतिक्रमण, गमनागमन आदि कोईभी क्रिया करने से पहले इरियावहि करनी जरुरी है, फिर नमोत्थुणं फीर लोगस्स इस क्रम से क्रमशः सूत्र शीखने चाहिए ।

स्वर, व्यंजन, मात्रा बिंदु, पदच्छंद, पद अक्षर से विशुध्ध, एक पद के अक्षर में दुसरे न मील जाए ऐसे, तथा अन्य भी कई गुणसहित सूत्रो का अध्ययन करना चहिए ।

२८५) अनशन व्रत वाले जीव को यदि वर्धमान विद्या से अभीमंत्रित वासक्षेप देने में आवे तो वह आराधक बनता है । वर्धमान विधि की इस मंत्रित वासक्षेप से सर्व विघ्न-उपद्रवो का शमन होता है।

२८६) धार्मिक सूत्र सामायिक लेकर कंठस्थ करने, पढने चाहिए । और सूत्र याद होते जाने पर १-१ आयंबिल अंत में करने चाहीये ।

२८७) बालक को पहले धर्मकथा धर्म में स्थिर, दृढ धर्मी और जिनमतानुरागी श्रध्दावान् बनाके फीर क्रमशः छोटे छोटे पच्चखाण दिलाकर आगे बढाते बढाते देशविरतिधर-सर्व विरतिधर बनाना ।

२८८) मासक्षमण करनेवाला जीव यदि स्वाध्यायध्यान रहित हो तो

१ उपवास का भी फल मिलता नहीं है । एकाग्रता से स्वाध्याय करनेवाले को अनंत कर्म की निर्जरा है ।

२८९) शरीर की विभूषा दिखे इस प्रकार से कपडे पहननेवाला जीव "विभूषा कुशील" हैं ।

२९०) एक दिन की गोचरी (सूकी वस्तु आदि) वहोराकर दुसरे दिन वापरने से तथा, रात्री में (सूर्यास्त बाद) बनी हुई वस्तु दिन में वापरने से भी रात्री भोजन का दोष लगे।

२९१) जो अच्छी रीत से कही गई हितशिक्षा की भी अवगणना करते है, जो आगमादि श्रुतज्ञान को अप्रमाणित करते है, जो अनाचार की प्रशंसा करते है वह 'परमाधामी असुर' के रुप में उत्पन्न होते है।

२९२) जो साधु-साध्वी परपाखंडी की प्रशंसा करे, उनके अनुकूल शब्द बोले, उनके शास्त्र को प्ररुपे, विशेष से श्रवण करे, विर्ध्वानो की सभा में उनकी, या उनके शास्त्र के गुणगान करे वह जीव मरकर ''परमाधामी असुर'' के रुप में उत्पन्न होती है।

२९३) सर्व आवश्यक क्रिया में काल का उल्लंघन करनेवाला, गुरु के उपकरणो का, परिभोगी, परिक्षा कीये बिना दिक्षा देनेवाला, बिना समयें यहाँ-वहाँ घुमनेवाला, मंत्र-तंत्र के प्रयोग करनेवाला, दिन को निद्रा लेनेवाला, साधु कुशील है, कुसाधु - कुगुरु है उनका त्याग करना चाहिए।

२९४) साधु को साध्वीयाँ/श्राविकाएँ १३ हाथ दूर रहकर वंदन करे। यह उत्सर्ग मार्ग है।

२९५) संयम की विराधना करके जो यदि तीर्थयात्रा होती हो, तो ऐसी तीर्थयात्रा करने का भी साधु-साध्वीजीओ को निषेध है।

२९६) आत्महित करते हुए, जो यदि शक्य हो तो परहित करना, लेकिन आत्महित और परहित दो में से एक करना हो तो मात्र आत्महित करना। (विशेष - शासन प्रभावना भी स्व संयम आराधना को गौण करके नहीं करनी है)

२९७) साधु त्रसकाय के जीव का संघट्टा करे - कुचले मर्दन करे तो वह कर्म जब उदय में आवे तब यंत्र में जैसे गन्ने का रस नीकले इस प्रकार से वह भुगतना पडे, यह भुगतने का जधन्य काल- १२वर्ष, मध्यम - १000 वर्ष, उत्कृष्ठ-१0,000 वर्ष, और जानबुजकर उपद्रव या क्रिया करने के निमित्त से करे तो करोडो वर्ष तक यह पापफल भुगतना पडता है, ऐसा जिनेश्वरो का कथन है ।

२९८) जो भावाचार्य है, वह तीर्थंकर के समान ही है, इसलिए भावाचार्य के वचन की आशातना साक्षात् तीर्थंकर की आशातना है ।

२९९) दिक्षा छोडकर गृहस्थी बननेवाले को, उसे यहाँ कोई न पहचाने ऐसा क्षेत्र-प्रदेश में जाकर रहना चाहिए । और अणुव्रत (श्रावक) का पालन करना चाहिए, जिसके कारण परिणाम निर्ध्वंस न बने ।

३००) बातचीत से प्रणय उत्पन्न होता है प्रणय से रति, रति से विश्वास और विश्वास से स्नेह उत्पन्न होता है, इसलिए मुनि स्त्रीयों से बातचीत भी ना करे ।

३०१) दिक्षा छोडने की इच्छावाले मुनि को अपना वेश और रजोहरण कीसी भी हालत में गुरु को वापीस हाथ में देकर ही जाना ।

(उस समय अगर जीव योग्य - पात्र हो, तो गुरु द्वारा विविध युक्ति से समजाने, उपाय आजमाने पर, वह शायद संयम में पुनः स्थिर हो जावे।

३०२) एक मच्छीमार खुद की पूरी जिंदगी में मछली पकडके, जितना पाप बांधता है, उससे ८ गुना ज्यादा पाप महा व्रतभंग (नियम- पच्चखाण भंग) करने की मनसे इच्छा करनेवाला जीव बांधता है ।

३१०) साधु को दिक्षा-प्रतिष्ठा-पदवी आदि विशिष्ट प्रसंग में ही वासक्षेप करने का अधिकार है । नित्य-निरंतर वासक्षेप देना का विधान/अधिकार नहीं है । ऐसा इस सूत्र की बृहदवृत्ती में कहा गया है ।

३११) विनयोपचार से मान का भंजन, गुरुजनो की पूजा, तीर्थंकर की आज्ञा का पालन, श्रुतधर्म की आराधना और अक्रिया (मोक्ष) होती है ।

३१२) पासत्था साधु ब्रह्मचर्य से पतित रहेते है, अगर कोई ब्रह्मचारी साधु उन्हे वंदन करे तो, पासत्था साधु को स्वयं यह करना चाहिए की आप भले दिक्षा में छोटे हो, लेकिन मेरे से ज्यादा पूजनीय हो, यानी मुझे वंदन मत करो ।

३१३) साधु विहित है या नहीं इसकी परिक्षा, वसती, विहार-स्थान, भाषा और गमन के द्वारा होती है ।

३१४) जो साधु अल्प आहार, अल्प बोलना, अल्प निद्रा और अल्प उपधि (उपकरण) वाला हो उसे देवता भी वंदन करते है ।

३१५) "कीस रीत से, क्या करुं, तो मुझे रोग न हो" - लगातार इसका विचार करना भी आर्तध्यान है । और यह दुर्गती का कारण है ।

३१६) मुनि मोक्ष का भी नियाणा न करे, वह मुक्ति और संसार-दोनों में निःस्पृह भाव रखे ।

३१७) धन का संरक्षण-संवर्धन करने के सतत विचार चलते यह रौद्र ध्यान है, यह खास लक्ष रखना ।

३१८) जहाँ ध्यान करनेवालो को मन-वचन-काया के योग की स्वस्थता रहे ऐसा जीव संघट्टादि विराधना रहित क्षेत्र में, गाँव में या निर्जन स्थान में, दिन में या रात्रि को बिना प्रतिबंध ध्यान करना चाहिए ।

३१९) जो देहावस्था ध्यान को पीडा पहोंचानेवाली न हो, वह अवस्था में ध्यान करना चाहिए, चाहे वह बैठके हो, खडे होकर हो, के सोते हुए हो ।

३२०) सूत्र–अर्थ चिंतन का जीव आलंबन लेकर उत्तम धर्मध्यान में चढ सकता है ।

३२१) ध्यान पूर्ण (पूरा) होने के बाद भी मुनि अपने आत्मा को अनित्यादि १२ भावनाओ से भावित करे ।

३२२) मोक्ष का मार्ग संवर और निर्जरा है, उस दोनो का उपाय तप है, उसका प्रधान अंग ध्यान है, इसलिए ध्यान मोक्ष का हेतु है ।

३२३) गृहस्थो के पास सोना–चांदी आदि कींमती वस्तु हीरा, मणिक, मोती आदि रत्न होते है, साधु के पास रजोहरण यह भाव 'रत्न' है ।

३२४) जिस प्रकार सुथार–करवत से लकडा काटता है, उस प्रकार सुविहित संयमी कार्योत्सर्ग से अपने अष्टकर्मो को काटते है ।

३२५) स्वाध्याय, तप, ध्यान, औषध, उपदेश, स्तुति प्रदान और संत गुण कीर्तन में पुनरुकित दोष लगता नही है ।

४१. श्री पींड निर्युक्ति सूत्र

३२६) गुरु तपस्वी, ग्लान, वृध्द और नूतन दिक्षित का पहेले काप निकालकर फीर अपने वस्त्र का काप नीकालना यह विनय है ।

३२७) पहेले अल्प मेले फीर ज्यादा मेले (इस क्रम से) काप निकालना ।

३२८) धोबी की तरह पछाडके वस्त्र न धोने ।

३२९) साधु को निर्वाण (मोक्ष) ही एकमात्र कर्तव्य है, और उसके लिए ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना है, और यह सात्वीक आराधना में सहायभूत शुध्द निर्दोष आहार है इसलीए साधु अतिजागृत होकर एषणीय दोषरहित आहार की गवेषणा करे ।

३३०) आधाकर्मी गोचरी वापरनेवाले के साथ बैठकर शुध्द गोचरी वापरनेवाला भी दोषी है, क्योंकि उसमें उसके 'अनुमति दोष' लगता है ।

३३१) रस्सी से, या सीडी से नीचे उतरना यह द्रव्य अध: कर्म संयम से, शुभ लेश्या से नीचे उतरना यइ भाव अध: कर्म (आधाकर्मा)

३३२) आधाकर्मा वापरनेवाला निम्न भव का आयुष्य बांधता है, शेष कर्मो को दुर्गंति सन्मुख करता है, तथा तीव्र भाव से कर्म को गाढ करता है ।

३३३) मैं श्रेष्ठ प्रवचनकार हुँ, (इसलिए लोक मुझे सुंदर गोचरी-पानी देते है इस भाव से गोचरी व्होरानेवाला साधु ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है ।

३३४) आधाकर्मी प्राय: स्निग्ध और अनुकूल होने से (अतिआहार) भी हो जाता है, उससे स्वाध्याय में हानी-अजीर्ण-चिकित्सा षट्कायवध आदि अनेक दोष उद्भव होते है ।

३३५) शुध्द गवेषक साधु भुल से (अनजाने में) आधाकर्मी वहोराकर वापरे तो भी वह शुध्द है, क्योंकि उसमें ऐसा दोषित वहोराने का उद्देश नही है ।

३३६) गोचरी निकलनेवाले साधु को श्रोतादि पांच इन्द्रीयो की आसक्ति नहीं करनी अगर उसका ध्यान इन्द्रीय के विषय में गया तो वह एषणा और अनेषणा को सम्यक् जान नहीं सकेगा ।

३३७) पास में गोचरी जाकर फीर वापीस मेरे घर पधारो-जो ऐसा कहे उसके घर पर पुनः गोचरी नहीं जाना ।

३३८) साधु के निमित्त से बने हुए सिर्फ आहार ही नही बल्की पानी, उपकरण (या दिये हुए) वसति (उपाश्रयादि) सभी में आधाकर्मी का दोष लगता है ।

३३९) सामान्य से श्रुत में उपयोगवंत श्रुतज्ञानी अनजाने में अशुध्द गोचरी ग्रहण करके आवे, तो भी केवलज्ञानी उसको ग्रहण करें, अन्यथा श्रुतज्ञान अप्रमाणित बने । श्रुत के अप्रमाणितपणे में चारित्र का अभाव और चारित्र के अभाव में मोक्ष का अभाव होवे ।

३४०) साधु प्रायः अलेपकृत आहार करे, इसलिए मुनि को ज्यादा से ज्यादा आयंबिल करने का विधान बताया है । शरीर या संयम योग *की ग्लानि में बल प्राप्त करने कदाचित विगई का उपयोग करना* पडे तो (छाछ) तक्रादि ही उपयोगी है, उसका ग्रहण करना ।

३४१) चावल, उडद, वटाने (सूके), वाल, तुवेर, मुँग, मसुर आदि अलेपकृत द्रव्य है ।

३४२) वत्थुले की भाजी, राब, छाछ, ओसामण, पकाई हुई दाल यह सब अल्प लेपकृत द्रव्य है ।

३४३) दूध, दही, खीर, गुड का पानी, खजूर आदि द्रव्य बहुलेपकृत द्रव्य है, साधु बहुलेपकृत द्रव्य का त्याग करें ।

३४४) संयोजन दोष रसवृध्दि का कारण होने से, कल्पे नही, लेकिन शेष बची हुई गोचरी न परठनी पडे उस हेतु से, या बालमुनि को या ग्लान (बिमार) मुनि को कल्पता है ।

३४५) विरुध्द द्रव्य एकसाथ वापरने की मनाई है जैसे मुँग और दूध ।

३४६) रोग में, उपसर्ग सहन करने के लिए, ब्रह्मचर्य के विशेष पालन में, प्राणीदया के लिए, तप के लीए, और संथारा (अनशन व्रत)

इन छ: कारण में लिए आहार का त्याग मुनि करें ।

३४७) आहार नहीं करनें से (अति उपवास आदि) प्राण बल गल जाता है, उत्साह नाश होता है, शरीर के सारे अंग शिथील बनते है, सत्य का नाश होता है अरति की वृद्धि होती है, इन ६ कारणो के लिए जिनेन्द्रो ने आहार करना बताया है ।

३४८) इस सूत्र की वृत्ती में कहा है कि आधाकर्मी आहार वापरना, वमन (उल्टी) विष्टा, मदिरा (दारु) तथा गौमांस समान है, इसलिए श्रमण-श्रमणियाँ इसका त्याग करे ।

३४९) अचलगच्छ के माणिकय सागर सूरि ने इस सूत्र पर २८३३ श्लोक प्रमाण दीपीका की रचना की हैं तथा अचलगच्छाधिपति जयतिलक सूरी के शिष्य मुनि क्षमारत्न सागरजी ने इस पर अवचूरी लीखी है ।

४१. श्री ओधनिर्युक्ति सूत्र

३५०) विहार करते जाते हुए (एक स्थान से दुसरे स्थान) तब भी साधु सूत्र पोरीसी न चूके ।

३५१) जब देवता का उपद्रव हो, तो (व्यंतरका आदी) (१) विगई नहीं वापरनी (आयंबिल करना) (२) नमक न लेना (३) दशीवाला वस्त्र न वापरना (४) लोहे (लोखंड) को स्पर्श नहीं करना ।

३५२) जहाँ-जहाँ अलग भूमि आवे (अलग मीट्टी) आवे, वहाँ साधु पैर पोंज लेवे । गृहस्थ देखे ऐसे नहीं पूंजे ।

३५३) मुनि को रस्ता पूछते समय प्रीतीपूर्वक, और कमसे कम २ व्यक्तिओ को रस्ता पूछना जिससे गलत रस्ते पर न चला जावे ।

३५४) चारो तरफ ओस (धुम्मस) हो तब बाहर न नीकले, पूरे शरीर को ढक दे ।

इस प्रकार कंबल ओढकर मकान में बैठे - कुछ भी क्रिया न करे, मौन रहें, अगर कुछ जरुर पडे तो सिर्फ इशारे से ही बाते करे ।

३५५) विहार करते हुए रस्ते में कोई गाँव आवे, तों वहाँ से होकर जाना, क्योंकि वहा रहे हुए जिन मंदिर दर्शन का लाभ मीले, कोई आचार्य वहाँ हो तो वंदन का लाभ मिले, कोई ग्लान मुनि हो तो सेवा का लाभ मिले ।

३५६) रस्ते में (विहार) कोई बिमार (ग्लान) साधु साध्वी मिले तो उनकी सेवा वैयावच्च करके फीर ही आगे जाना चाहिए ।

३५७) जब डॉक्टर के पास जाना हो तो कमसे कम ३ साधु साथ में जावे तथा मलिन वस्त्र नहीं, परंतु बिलकुल साफ / शुध्द श्वेत वस्त्र पहनकर जावे ।

३५८) ग्लान साधु खुद आहार लाता हो जावे और बाहर स्थंडिल भूमि जाता हो जावे तब तक तो उनकी वैयावच्च करनी ही करनी ।

३५९) ग्लान की सेवा करनी (बिमार साधु) यह तीर्थंकरो की आज्ञा है उस समय बाकी सब कार्य गौण है ।

३६०) गोचरी वहोराकर आने के बाद तुरंत ही वापरने नहीं बैठना, उसमें दोष है, लेकिन गोचरी वहोराने वाला साधु थोडा स्वाध्याय करे फीर गोचरी वापरने बैठे इसमें बहोत लाभ है ।

३६१) साधु को कारणवश गृहस्थ के घर में रात्री मुकाम करना पडे तो, स्त्री रहित मकान में ठहरे ।

३६२) सीर्फ तीर्थयात्रा की एकमात्र दृष्टी से ही होनेवाला विहार शास्त्र मुताबिक "निष्कारण विहार" है । इसका सुविहित सुसाधु यह सदैव ध्यान रखे ।

३६४) चातुर्मास शुरु होने से पहेले साधु महास्थंडिल भूमि भी देखके रखे, क्योंकि चार्तुमास में कोई मुनि काल करे, तो उनके महा परिष्ठान के लिए काम आवे ।

३६५) विहार की शुरुआत अच्छी तिथि, और अच्छे शुकन देखकर करना, अपशुकन का त्याग करना । विहार के शुभ शुकन - गाय, वार्जीत्र के आवाज, पूर्ण भरा हुआ घडा, शंखनाद, छत्र, फुल, जैन साधु, पूर्ण कलश इत्यादि ।

अपशुकन - मलीन शरीरी, फटे हुए कपडेवाला, शरीर पर तेल लगाया हुआ, ठींगनाल पुर्ण गर्भवती स्त्री, कुत्ता, बडी उम्रवाली कन्या, लकडे का भारा, इत्यादी ।

३६६) मात्रा (लघुशंका) रोके तो चक्षु का ते घटे, और डकार (ओडकार) रोके तो कुष्ट रोग आवे ।

३६७) उठने के बाद भी जो अगर आंख में नींद हो तो साँस का रोधन करना ।

३६८) रात्री को निद्रामें से उठकर लघुशंका निवारण करके इरियावहि करके साधु जधन्य से कमसे कम ३ गाथा का स्वाध्याय करके प्रमाद दोष दूर करके फीर सोंए ।

३६९) उत्सर्ग से शरीर उपर कपडा ओढे बीना मुनि सोए । ठंडी लगे तो भी ठंडी न जाए तो बाहर जाकर कार्योत्सर्ग करके फीर अंदर आके क्रमश: १-१ वस्त्र ओढे । जैसे समाधि रहे वैसा करें ।

३७०) बाहर से आकर समान उपाश्रय में ठहरनेवाले महेमान साधु की उपाश्रय वाले साधु ३ दिन आहार पानी लाने की भक्ति करे ।

३७१) दिवाल से कम से कम १ हाथ दूर संथारा शय्या करना ।

३७२) जिनालय जाते समय आचार्य के साथ १-२ साधु को पात्रे साथ में लेने, क्योंकि वापिस आते समय यदि कोई गृहस्थ गोचरी के लीए प्रार्थना करे तो उसे लाभ दे सके ।

३७३) स्थापना कुल के घर यानि जहाँ से आचार्य, ग्लान या महेमान साधु की भक्ति योग्य भिक्षा मीले ऐसे घर । वहाँ सामान्य साधु के लीए भिक्षा लेने नहीं जाना, लेकिन उपर बताए गए विशिष्ट पुण्यात्माओ के लीए ही जाना । ताकी उनकी अच्छी भक्ति-सेवा हो सके ।

३७४) पडिलेहण करते हुए बातचीत करे, पच्चखाणादि देवे तो दोष लगे, छ:काय की विराधना होवे ।

३७५) पडिलेहणादि प्रत्येक अनुष्ठान भगवान की आज्ञा मुजब करने से कर्म निर्जरा होती है, जिनोक्त पडिलेहणादि प्रत्येक योग की आराधना करने से अनंत आत्मा केवली बनकर मोक्ष में गए है ।

३७६) सूर्य और गाँव को, पीठ देकर स्थंडिल बैठने से अपयश मिले।

३७७) तुटे हुए पात्रे को अंदर से नही जोडना, सीर्फ बाहर से जोडना, अंदर से जोडने से पात्र निर्बल बनते है।

३७८) पांच भरत, पांचऐ रावत, पांच महाविदेह क्षेत्र इन पंदरा कर्मभूमि में रहे हुए साधु में से १ भी साधु की अवज्ञा-अवहेलना - आशातना करने से सभी साधु की अवहेलना-आशातना होती है, दोष लगता है।

३७९) साधु को उत्सर्ग से दिन मे सोने की मनाई है, लेकिन अपवाद से लम्बे-विहार से श्रमीत हुआ हो, या वृध्द या बिमार मुनि हो तो सोना कल्पे, लेकिन गुरु की आज्ञा लेकर, प्रगट (जाहेर) जगा को छोडकर अंदर के भाग में संथारा करे।

३८०) गोचरी वापरने से पहले साधु मांडली में यथास्थान बैठे जाए, फीर स्वाध्याय करे, कोई असहिष्णु हो, तो उसे पहले वापरने दे देवे। अन्यथा सब साथ में वापरे।

३८१) आहार वापरते समय पहले स्निग्ध और मधुर आहार वापरना, ताकि उससे बुध्दी और बल बढे, पित्त का शमन होवे। और स्निग्ध आहार घी-तेल युक्त अंत तक न रखे और कवचित परठना पडे तो विशेष संयम विराधना चींटीया आदि से बचे।

३८२) आचार्य के गोचरी के लिए तो उत्कृष्ट गोचरी द्रव्यं (अनुकूल) वहोराना, जो न मिले तो जो मिले वह वहोराना, लेकिन ग्लान साधु के लिए तो नियमा (अनुकूल) प्रायोग्य द्रव्य ही वहोराना।

३८३) व्रण रहित मजबूत पात्रे रखने से कीर्ति और आरोग्य मिले, स्निग्धवर्णी पात्रे से ज्ञान संपति मिले, उच्चे पात्रे से गच्छ (गण) और चारित्र में स्थिरता न रहे। छीद्रवाले पात्रे रखने से शरीर पर फोडे आदि आवे।

३८४) २ मुहपत्ति से ज्यादा मुहपत्ति रखनी साधु को नहीं कल्पें, दोष परिग्रह का लगे ।

३८५) नेईलकटर, पडदा, अस्त्रा आदि सीर्फ आचार्य रखे, अन्य कोई साधु न रखे ।

३८६) सुसाधु को ग्लान (बिमार) ऐसे पासत्थे साधु की भी सेवा करनी, वो लोकोपवाद से बचने के लिए, खुद के उचित के लिए तथा उसे पुन: सन्मार्ग में स्थापित करने के लिए है ।

३८७) मुझे तो ऐसा ही चाहिए, ये चले, ये न चले, ये जमे-ये न जमे, यह अनुकूल आवे - यह न आवे इस तरह का भाव साधु न रखे । सर्व काल-क्षेत्र-द्रव्य से अप्रतिबंध होकर विचरे । जो मीले-जैसा मीले - जीस प्रकार का मिले वैसा निर्दोष और प्रासुक ग्रहण करे ।

३८८) दोषवाली, अशुध्द गोचरी वापरने से चोरी का पाप लगे, क्योंकि वह तीर्थंकर अदत्त है ।

३८९) साधु और आचार्य ये दोनो सुने (चार-कान) इस प्रकार आलोचना करनी तथा साध्वीजी को अकेले आलोचना न करनी, अन्य एक साध्वीजी को साथ रखकर आचार्य के पास (छ:कान सुने) इस प्रकार आलोचना करनी ।

३९०) लगे हुए पाप-दोष-अतिचार की आलोचना तो करनी ही है, लेकिन साथ में जो अपने स्वभावगत वृतीयाँ हो गई है ऐसे वीपरीत वृतीओ की तो खास आलोचना करनी है ।

३९१) मैं पाप की आलोचना (प्रायश्चित) लूंगा तो लोग मेरे बारें में क्या सोचेंगे ?

बडी आलोचना आएगी तो उस तप के द्वारा मेरा शरीर ही सुख जाएगा, मैं तो वैसे ही तपस्वी हूँ, मुझे आलोचना तप की क्या जरुरत है ?

मेरे इतने शिष्य है, इतने भक्त है, इतनी पुण्याई है - मैं तो आलोचना करुं ही कैसे ? मैं तो ज्ञानी हुँ, मुझे पता है कौन से दोष का कितना प्रायश्चित आता है, मैं वह प्रायश्चित बिना बताये कीसी को खुद ही कर लुँगा।

ऐसे अलग अलग विभिन्न कारणो से जीव आलोचना (प्रायश्चित) लेता नही है।

३९२) जीव ७ कारणो से दोष का सेवन करता है।

१. अनजाने में २. मुढता (अज्ञानता से) ३. भय से ४. दुसरो को प्रेरणा से ५. संकट में ६. रोग पीडा में ७. राग-द्वेष से.

४२. दशवैकालिक सूत्र

३९३) जो आत्मा में वर्ते वह अध्यात्म, और उसे चित्त में लाना वह अध्ययन।

३९४) गोचरी गया हुआ साधु, गृहस्थ के न अति नीकट और न अती दूर खडा रहे।

३९५) जो आत्मा पर उपकार करनें में असमर्थ है, या अतिरिक्त है, या अजयणा है, वह अधिकरण है।

३९६) स्वभाव में विकार उत्पन्न करनेवाले द्रव्य को 'विगई' कहते है।

३९७) जिस के कारण पाप छेद जाता है, अर्थात नाश हो जाता है उसे 'प्रायश्चित' कहेते है, या जो प्राय:चित्त को विशुध्द करे उसे प्रायश्चित कहेते है ।

३९८) प्रायश्चित से कार्योत्सर्ग (व्युत्सर्ग) रुप तप (छः अभ्यंतर तप को) लौकीक मतवाले अन्यतिर्थिक सम्यक रुप से जानते नहीं, या सम्यक रुप से मोक्ष प्राप्ति के लीए आचरते नहीं इसलीए इसे जिनशासन में 'अभ्यंतर तप' कहा गया है ।

३९९) जो श्रमण, सुख का रसिक है, शाता के लीए आकुल है (इच्छुक) है अत्यंत निद्रा करनेवाला है तथा, बारबार हाथ-पैर-मुँह धोनेवाला है (मतलबकी शरीर विभूता का प्रेमी है । उसकी सुगति दुर्लभ है ।

४००) जो कोई साधु मेरे उपर अनुग्रह करे, और मुझे गोचरी का लाभ दे, तो मैं संसार सागर तर जाऊं, ऐसा शुभभाव शुध्द गोचरी वहोराके आया हुआ साधु वापरने से पहले करे ।

४०१) साधु-साध्वी को साथ में विहार करना नही कल्पे ।

४०२) अपने साथ संनिधि (खाने की वस्तु) रखनेवाला मुनि, मुनि नहीं है, बल्कि भाव गृहस्थ ही है ।

४०३) सूर्यास्त से सूर्योदय तक मुनि आहार करे तो नहीं बल्कि मन से भी आहार की इच्छा तक नहीं करे ।

४०४) गुरु की अवहेलना या गुरु वचन की विराधना करनेवाला हो वह शायद उत्कृष्ट संयम भी पालता हो तो भी उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता है ।

४०५) गुरु कर्म योग से कम बुध्दि, कम श्रुतवाले या कम पुण्यवाले हो और शिष्य अति तीव्र बुध्दिशाली, श्रुत संपन्न, विशिष्ट पुण्यवान रहे तो भी वह सदा समर्पित विनयभाव से, अहंकार कीये बिना गुरु को अनुकुल बने, ऐसी सेवा वैयावच्च करके गुरु को सदा शाता पहुँचावे ।

४०६) जो गुरु के इंगिताकार को जानकर उनकी सेवा सुश्रुषा करने के लिए सदा जागृत रहेता है - वह मुनि पूज्य है । (माया सहित अश्रध्दा या अबहुमान भाव से करे तो गुरु को आशातना है)

४०७) जो मुनि खुद की प्रशंसा कीसी भी स्वरुप में नहीं करता है, और पीठ पीछे कीसी की भी निंदा नही करता है, वह मुनि पूज्य है, धन्य है ।

४०८) गृहस्थ जीवन के काम-भोगादि कहलाने वाले सुख, दुषम काल के प्रभाव से अति तुच्छ, नि:सार, फेंक देने जैसे और अल्पकालीन है, परिणाम (फल) में दु:खदायी कटु वीपाको को देनेवाले है, यह सोचकर मुनि पुनः गृहस्थी बनने की मन से भी इच्छा न करे ।

४०९) दिक्षा छोडकर गृहस्थी बनने पर, वहाँ जाकर होनेवाले दु:खो से परेशान होकर फीर पस्तावा होवे, मैने दिक्षा क्युं छोडी ? ऐसा विचार करने तो इससे अच्छा है कि संयम जीवन के परिषहो-को सम्यक-समता से सहनकर के अपना जन्म कार्य सार्थक करलो ।

४१०) मुनि बारम्बार कार्योत्सर्ग करनेवाला रहेवे ।

४३. श्री उत्तराध्ययन सूत्र

४११) जो संयोग से मुक्त है, वह अणगार है । जो ममत्व से मुक्त है वो मुनि है ।

४१२) मुनि वाचाल न बने, अर्थात निरर्थक बातें करनेवाला न हो ।

४१३) कठोर या कोमल अनुशासन को सुसाधु हितकर मानता है और कुसाधु द्वेषकर ।

४१४) गुरु मेरे उपर अनुग्रह कर रहे है, यह जानकर गुरु की इच्छा मुताबिक वह आज्ञा करने से पहेले ही उचित कार्य को संपन्न करे वह विनयी शिष्य है ।

४१५) बिमारी की पीडा में पूर्व के कीये गए मेरे अशुभ कर्मो का वेदन (छेद) हो रहा है - ऐसे संवेगवर्धक आगम वचन का चिंतन करके समता में रहना चाहिए।

४१६) साधु, पूर्व के परिचित (गृहस्थ) की भी कांक्षा (इच्छा) तथा सत्कार न करे ।

४१७) उर्ध्व लक्ष रखनेवाला साधक कभी भी बाह्य विषयो की आकांक्षा न करे ।

४१८) मुनि, प्राय: निरस, शीतपींड (ठंडा आहार), पूराने कठोर, सार बिना के रुक्ष बोर आदि के चूर्ण से ही गोचरी करके जीवन यापन करे ।

४१९) जो हिंसा और मूर्च्छा इन दोनो का त्याग करता नहीं हैं वह साधु नही है ।

४२०) जिसने अपने आत्मा को जीत लीया, उसने जगत को जीत लिया और वश किया ।

४२१) मन की इच्छाएँ, अपेक्षाएँ आकाश जितनी अनंत है, पूरी पृथ्वी के तमाम पदार्थ उसे पूरी करने के लीए समर्थ नहीं है ।

४२२) अच्छे कल्याण मित्रो की मित्रता को, ठुकराने वाला और अति प्रिय व्यक्ति के पाप (अनाचार) को प्रगट करनेवाला-अविनित, अयोग्य व्यक्ति है ।

४२३) जो बहुश्रुतवान् मुनि हो, उसें भी तप में यत्न करना चाहिए ।

४२४) जो गृहस्थ सत्य धर्म जानने के बाद भी हिंसा-आरंभ और परिग्रह न छोडे उसे उपदेश देना व्यर्थ है ।

४२५) जो कामनाओ से मुक्त होते नहीं है, वह अतृप्ति की अग्नि में जलकर वृध्दत्व और मृत्यु को प्राप्त करते है ।

४२६) जो निम्न मध्यम वर्ग और दरिद्र घरो में भी बिना खेद कीये गोचरी जाते है वह सच्चे मुनि है, सुसाधु है ।

४२७) जीस प्रकार स्निग्ध आहार ब्रह्मचर्य के पतन का कारण है, उसी प्रकार अति मात्रा में कीया हुआ आहार भी ब्रह्मचर्य के पतन का कारण है ।

४२८) मेरा सब कुछ बराबर चल रहा है, तो मुझे शास्त्राभ्यास करके क्या करना ? ऐसा सोचनेवाला, सुबह से शाम तक गोचरी वापरने वाला, दिन में बिना कारण निद्रा करनेवाला, गुरु एवं आचार्य की चिंता नहीं करनेवाला (उनका ध्यान) / ख्याल नही रखने वाला), बिना पूंजे-प्रमाजे बैठनेवाला, अशुध्द पडिलेहन करनेवाला 'पापश्रमण' है - ऐसा जिनेश्वरो ने कहा है ।

४२९) मुनि सदैव बाहर से भी प्रसन्न रहे और अंदर से भी प्रसन्न रहे ।

४३०) अस्थिर-चंचल चित्तवाला मुनि संयम का पालन नहीं कर सके ।

४३१) कषाय रुपी अग्नि को श्रुतज्ञान, शील (ब्रह्मचर्य) और तप के जल से बुझानी चाहिए ।

४३२) धर्म उपदेश के सतत अभ्यास से मनरुपी धोडी को लगाम में रखा जा सकता है ।

४३३) अष्ट प्रवचन माता में जिनेन्द्र कथित द्वादशांगी रुप समग्र प्रवचन अंतर्भूत है ।

४३४) साधु अपनी तमाम क्रियाएँ पूर्ण उपयोग (जागृती) पूर्वक करे ।

४३५) साधु पांच इन्द्रीयो के विषय और पांच प्रकार के स्वाध्याय को छोडकर सिर्फ चलते समय गमन क्रिया में ही तन्मय बने ।

४३६) प्रश्न = आरंभ और समारंभ किसे कहेते है ?

उत्तर : आरंभ यानि-अत्यंत क्लेश से दुसरे के प्राणो को हरना (मार देना) और समारंभ यानि की दुसरो को पीडा-त्रास-तकलीफ होवे ऐसा वर्तन व्यवहार.

४३७) संयमी साधु गृहस्थ को नींद में से उठावे नहीं (नहीं तो, उठकर वह गृहस्थ दिनभर जो छकाय की विराधना करेगा, इसका दोष साधु को लगे)

४३८) गुरु के द्वारा सारणा-वायणा-चोयणा-प्रतिचोयणा द्वारा बार बार समजाने पर भी शिष्य न सुधरे, तो ऐसे दु:शिष्य का त्याग करके गुरु अपनी आत्मिक आराधना में लीन हो जाए ।

४३९) धर्म के उपर परम श्रध्दा करने से शीघ्र संवेग आता है । निर्वेद से जीव विषयो और आरंभो से विरक्त बनता है, माया रहित होकर सरल स्वभाव से आलोचना करनेवाला स्त्रीवेद और नपुसंक वेद का बंध करता नही है, स्वआत्म निंदा करने से वैराग्य की प्राप्ती होती है, पंचपरमेष्ठि को वंदन करने से उच्चगोत्र का बंध, नीच गोत्र का क्षय, और जीव आदेय नाम कर्मवाला बनता है । कार्योत्सर्ग करने से जीव पापो से हल्का बनता है । स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मो का नाश, क्षमापना करने से मैत्रीयुक्त भाव शुध्धी और सभ्यता प्राप्त होती है । प्रतिपृच्छा रुप स्वाध्याय करने से जीव कांक्षा मोहनीय का छेद करता है । परावर्तना (पुनरावर्तन) से जीव पदानुसारीता आदि व्यंजन लब्धि प्राप्त करता है ।

अनुप्रेक्षा करने से जीव सात कर्मो की स्थिति को शिथिल और अल्पकालीन करता है, उसके तीव्र रसानुबंध को मंद करता है । धर्मकथा से जीव प्रवचन की प्रभावना करता है । मन को एकाग्र करने से चित्त का निरोध होता है । तप से जीव पहेले बांधे हुए कर्मो को तोडता है । वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकरनाम कर्म का उपार्जन करता है । शांति से जीव परिषहो के उपर विजय प्राप्त करता है । सरलता से जीव अविसंवाद को प्राप्त करता है । मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता प्राप्त करता है । वचनगुप्ति से जीव निर्विकार भाव को प्राप्त करता है ।

४३९अ) (विविध प्रकार के अभिग्रहो का धारण करना (गोचरी संबंध में) यह वृत्ती संक्षेप तप का प्रकार है ।)

४४०) गुरुजन और वृध्दो की सेवा करनी, अज्ञानी लोगो के संपर्क से दूर रहेना, स्वाध्याय करना, एकांत में निवास करना, सूत्र-अर्थ का चिंतन करना तथा धैर्य (धीरज) रखना-यह दुःखो से मुक्ति का उपाय है ।

४४१) जो नम्र, सरलतावाला, विनयी, दृढ धर्मी, पापभीरु जीव है वह तेजो लेश्या वाले जीव है ।

४४२) कषाय जिसके अल्प है, मितभाषी, प्रशांत चित्त, जितेन्द्रीयता यह पदमलेश्या वाले जीव के लक्षण है ।

४४३) जो शुक्ल ध्यान में लीन है, अष्ट प्रवचन माता के निर्मल पालक है, उपशांत और जितेन्द्रीय है - वह शुक्ल लेश्या वाले जीव है ।

४४. श्री नंदिसूत्र

४४४) जहां गुणरुपी भव्य भवन है, जो श्रुतज्ञान रुप रत्नो से भरे हुए है । विशुध्द सम्यकत्वरुप गलीयोंसे संयुक्त तथा अतिचार रहित अखंड चारित्ररुप किल्ले से जो सुरक्षित है, ऐसे 'संघ नगर' का सदा कल्याण हो ।

४४५) १७ प्रकार का संयम, ये संघरुपी चक्र की नाभी है, छ: बाह्य और छ: अभ्यंतर तप रुप चक्र संघ के १२ आरे है, संघरुप चक्र की परिधि (घेरावो) सम्यकत्व है, ऐसे संघ को मेरा नमस्कार हो । जो प्रतिचक्र से रहित है । अतुलनीय अद्वीतीय है, ऐसे चक्ररुप संघ की जय हो ।

४४६) संघ रुपी रथ के उपर १८,००० शील गुण रुपी उँची ध्वजाएँ लहेरा रही है, तप और संयम रुप घोडे जुडे हुए है, पांच प्रकार के स्वाध्याय का मंगल मधुर ध्वनी (नंदीघोष) नीकल रहा है, ऐसे मोक्ष पथ गामी रथरुपी संघ का सदा कल्याण हो ।

४४७) कर्मरज स्त्री कीचड और जल से अलिप्त, श्रुतरत्न रुप दीर्घनाल *युक्त, पांच महाव्रतरुप कर्णीकायुक्त, उत्तर गुण गुण* रुप परागयुक्त आध्यात्मिक रस और आनंद रुपी मकरंद सुगंध के कारण भावित श्रावको रुप भंवरो से धीरा हुआ, तीर्थंकर रुप सूर्य के केवल ज्ञान रुप तेज से विकसित, श्रमण गण रुप हजारो पंखुडीयो वाले 'पदम्‌कमल' रुप संघ का सदा मंगल हो।

४४८) तप प्रधान संयम रुप मृगचिन्ह से अंकित, अक्रियावादी आदि विविध मतमतांतर रुप राहु ग्रह से ग्रसित न होनेवाला, सदा निराबाध निर्मल-निरतिचार दर्शनमोह रुपी मल से रहीत, सम्यकत्व रुप चांदनी से सुशोभित ऐसे चंद्ररुपी संघ की सदा जय हो।

४४९) अन्य मतमतांतर रुप ग्रह प्रभा को निस्तेज करनेवाला, खुद के तप-संयम के तेज से देदीप्यमान, इपान रुप प्रकाश फैलाकर अज्ञान अंधकार को हटानेवाला, विषय-कषाय रुप अवगुणो को दूर करनें में उपशम प्रधान 'सूर्य' रुपी संघ का सदा कल्याण हो।

४५०) मूल-उत्तरगुण की-प्रवाह रुप भरती आने से क्षमा, श्रध्दा, संवेद आदि की पानी रुप वृध्दि करनेवाला, स्वाध्याय और शुभयोग रुपी मगरमच्छ से युक्त, परिषह और उपसर्गो में भी निष्कंप निश्चल (मर्यादा न छोडनेवाला) आत्मीक सद्‌गुरु रुप असंख्य रत्नराशियों का भंडार गंभीर ऐसे ऐश्वर्ययुक्त विशाल 'समुद्र' रुपी संघ का सदा कल्याण हो।

४५१) संघरुप सुमेरु में सम्यगदर्शन रुप श्रेष्ट वज्रमय, चीरकालीन, मजबूत और गहरी आधार शिला है, वह शिला शंका-कांक्षारुप विवर से रहित है। यह संघ रुपी मेरु को विविध यम-नियम रुप सोने का शिलातल है। जो उज्वल चमकते चिंतन के शुभ

अध्यवसाय रुप अनेक कूटो से युक्त है । वहाँ शीलरुपी सौरभ से महकता, मनोहर नंदनवन है । संघ रुप सुमेरु में जीवदया रुप गुफाएँ है, श्रेष्ठ-तेजस्वी मुनिगण रुप शेर (सिंह) से आकीर्ण है । ज्ञान-दर्शन-चारित्र रुप विविध देदीप्यमान रत्नो से और आमऔषधि आदि २८ लब्धिरुप रहस्यमय जडीबुट्टीयोंसे संघ सुमेरु शोभायमान है ।

संघ रुप सुमेरु में संवर रुप जल के सतत प्रवाह रुप झरने है, और श्रावकगण रुप मोर धर्मस्थान रुप रम्यप्रदेशो में आनंद विभोर होकर स्वाध्याय-स्तुति रुप प्रचुर ध्वनी कर रहे है । संघ सुमेरु पर विनय गुण शोभित मुनिगण रुप स्फुरायमान विद्युत से चमकते शिखर है, जहाँ विविध संयम गुण संपन्न मुनिवर ही कल्पवृक्ष वन है, जो धर्मरुप फल और विविध आंतर रिध्दि रुप फूलो से युक्त है ।

ऐसे वह महामंदर (मेरु पर्वत राजा) रुप संघ को मैं विनम्रता के साथ वंदन करता हुँ ।

४५२) आत्मगम ज्ञान जीव को कोई न कोई निमित्त से होता सकता है ।

४५३) जंबुस्वामी १६ वर्ष की उम्र में ८ पत्नीयों का त्याग करके दिक्षा ली और ८० साल की उम्र में मोक्ष में गए ।

४५४) तिसरे पट्टधर प्रभवस्वामी ३० वर्ष की उम्र में दिक्षा लेकर ८६ वर्ष की उम्र में स्वर्ग में गए ।

४५५) चौथे पट्टधर आ. शय्यंभवसूरि २८ साल की उम्र में दिक्षा लेकर ६२ साल की उम्र में स्वर्ग में गए ।

४५६) पांचवे पट्टधर आ. यशोभद्र स्वामी २२ साल की उम्र में दिक्षा लेकर ८६ साल की उम्र में स्वर्गवासी हुए ।

४५७) छट्टे पट्टधर आ. संभूति विजय सूरि ४२ साल की उम्र में दिक्षित होकर ९० साल की उम्र में स्वर्गवासी हुए।

४५८) सातवे पट्टधर आ. भद्रबाहुस्वामी ४५ वर्ष की उम्र में दिक्षित होकर ७६ साल की उम्र में देवलोक पधारे (इन्होने श्रुतज्ञान का अत्यंत प्रचार किया)

४५९) आठवे पट्टधर आ. स्थूलिभद्रसूरि ३० वर्ष की उम्र में दिक्षा लेकर ९९ वर्षे की उम्र में स्वर्गवासी बने। (वह कामविजेता कहेलाए) (ये सभी आचार्य १४ पूर्वो के ज्ञाता थे।)

४६०) आचार्य मंगु, संपूर्ण कालिक सूत्र का प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे।

४६१) भांगा बनाने की पध्धति के विशिष्ट ज्ञाता, कर्म प्रकृति-सिध्धांत के विशेष प्ररुपक आचार्य आर्य नागहस्ति को मेरा नमस्कार है।

४६२) मिथ्याद्रष्टि की मती (बुध्दि) और उसका शब्द ज्ञान-विवाद, विकथा, पथभ्रष्ट तथा पतन का कारण बनने से वह मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ही है।

४६३) शास्त्र में मन को 'रुपी' कहा गया है, इसलिए मनोयोग-चिंतन-मनन मनोवर्गणा के पुदगल का ग्रहण होने से यह भी रुपी है।

४६४) कोई भी चीज को विशिष्ट प्रकार के क्षयोपशम से पुनःपुनः सोचने को 'चिंतन' कहेते है।

४६५) द्वादशांगी रुप रत्नपेटी के अंदर धर्म की व्याख्या आत्मकल्याण की विविध शिक्षाएँ, नौ तत्त्व का निरुपण, द्रव्यो का विवेचन, नयवाद, अनेकांतवाद, पंचमहाव्रत, तीर्थंकर-सिध्ध बनने के उपाय, रत्नत्रयी और तत्वत्रयी का विवेचन, कर्मग्रंथी भेदने के

उपाय, ६३ शलाका पुरुषो का जीवन चरित्र आदि अनेक विषयो का यथार्थ निरुपण सहीत अनेक श्रुतरत्न है ।

४६६) धर्म के नामपर, कुल परंपरा के नाम पर, देवी-देवताओ या पितृ के नाम पर छ:काय के जीवो की हिंसा करनी यह मिथ्यात्व है । (अधर्म का धर्म समजना यह मिथ्यात्व)

४६७) परिग्रह धारी, पाखंडी, ढोंगी असाधु को साधु मानना-यह भी मिथ्यात्व है ।

४६८) धार्मिक क्रिया करनेवाली व्यक्ति को प्रोत्साहित करना, प्रशंसा बहुमान करना भी एक बडी धर्मसेवा है ।

४६९) सुत्र का शुध्द उच्चारण कर्म निर्जरा का हेतु है, तथा अशुध्द उच्चारण अतिचार का हेतु है ।

४७०) अन्यतीर्थीक (अन्यदर्शनीयों के) युक्ति, ऋध्दि, आंडबर, चमत्कार, विध्वता, भय या प्रलोभन में न फँसकर केवली प्ररुपीत जैन धर्म में स्थिर रहेने से भी विशिष्ट कर्म निर्जरा होती है ।

४७१) सूत्र का उल्टा अर्थ कहेने-समजानेवाला, या सूत्र से विपरीत अर्थ कहेने-समजानेवाला उत्सूत्र प्ररुपक अनंत संसारी बनता है ।

४७२) व्याख्यान या वाचना सुनता हुआ शिष्य जहाँ आवश्यक हो वहाँ बीच में प्रसन्नतापुर्वक हुँकार करे, तथा सुत्रार्थ सुनने पर 'तहत्ति' शब्द का प्रयोग करे, अथवा, गुरुदेव आपने कहा, इसी प्रकार है, पूर्ण सत्य है, इत्यादि कहे ।

४५. श्री अनुयोगद्वार सूत्र

४७३) सम्यकज्ञान सर्व ज्ञेय पदार्थो का ज्ञायक, विघ्नो का उपशामक, कर्म निर्जरा का कारक, निजानंद का दायक और आत्मगुण का बोधक होने से मंगलरुप है ।

४७४) दत्तचित बनकर, मन को एकाग्र करके, शुभ लेश्या और तन्मय अध्यवसाय युक्त बनकर, तीव्र आत्म परिणाम से, आवश्यक के अर्थ में जागृत बनकर, शरीरादि को उसमें जोडकर, भावना से भाविक होकर अन्य कोई विषय में मन को जाने देने बीना जो साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका उभय काल में प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रिया करते है, उसे "लोकोतर भाव आवश्यक" कहा गया है ।

४७५) निर्दोष (हिंसादि दोष रहित), मनकी शांति और समाधिभाव से प्रशांत रस उत्पन्न होता है, अविकारता, मुख पर लावण्यमय, तेज-ओज इसके लक्षण है ।

४७६) कोई भी चीज की प्ररुपणा करने के लीए कमसे कम उसे ४ निक्षेपे से वर्णन करना (४ निक्षेपे नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव)

४७७) जो शमन करे, उसे 'श्रमण' कहेते हैं (राग-द्वेष-विषय-कषाय का शमना करना)

४७८) जिस प्रकार अग्नि, लकडे और घी से तृप्त होती नहीं, उसी प्रकार साधु भी ज्ञानाभ्यास से तृप्त होते नही है ।

४७९) जिसका 'सु-मन' है, वह श्रमण है (अर्थात अच्छे पवित्र मनवाला)

४८०) ज्ञान और क्रिया-मोक्ष रथ के दो पैये है । ज्ञान आँख है तो क्रिया पैर है, दोनो के सुमेल से ही आत्मा मोक्ष मंजिल तक पहुँच सकती है । इसलिए दोनो का समन्वय ही मोक्ष का कारण है ।

४८१) इस सूत्र में एकदम सफेद वस्त्र पहननेवाले मुनि को सिर्फ द्रव्य आवश्यक क्रिया करनेवाला कहा है । अर्थात मुनि मेले कपडे पहने-कपडो का काप जल्दी न निकाले ।

४७. अन्य ग्रंथ संदर्भ

४८२) साधु को नाखुन बढाने की मनाई करने में आई है ।

४८३) भस्मग्रह (भगवान के निर्वाण से २५०० साल बाद) उतरने के बाद लोगो की "ब्रह्मचर्य सहित" की शुध्ध, अल्प भी आराधना से देवता प्रसन्न होंगे।

४८४) जिस देश (राज्य) में सूतक का लोकपरंपरा अनुसार जो व्यवहार चलता हो, उस प्रकार व्यवहार करना ।

४८५) व्यवहार समकित भी निश्चय समकित का कारण है ।

४८६) साध्वीजी कीसी को प्रायश्चित-आलोचना नहीं दे सके ।

४८७) देव-गुरु और संघ की बहुमान-भक्ति करने से जीव 'व्यवहार समकित' की प्राप्ति करता है ।

४८८) पांच पद की अनानुपूर्वी गीनने से छमासी तप का फल तथा नवपद (नौ पद) की अनानुपुर्वा गीनने से बारमासी तप का फल मिलता है ।

४८९) चावल या गन्ने के खेत में, कमल के तालाब के पास, या जिनमंदिर के पास या वन (जंगल) में, या बागबगीचे (उद्यान) में कीसी को दिक्षा देने में आवें तो वह सबसे उत्तम (श्रेष्ट) है ।

४९०) साधु का वर्ण नवपद में श्याम (काला) बताने में आया है क्योंकि यह पंचपरमेष्ठि के वर्ण का '**मिश्रण**' है, इसलिए ।

४९१) जिनमंदिर कौन बना सके ?

न्याय + नीती-प्रमाणिकता पूर्वक धन का उपार्जन करनेवाला, अच्छे शुभ आशयवाला, और देव-गुरु की आज्ञा का पालन करेनवाला श्रावक को ही जिनमंदिर बनाने का अधिकार है, अन्य कीसी को नहीं, ऐसा षोडशक प्रकरण ग्रंथ में कहा गया है ।

४९२) गुरु के स्तुप करने के बहोत से उल्लेख ग्रंथ में है, मथुरा में भी ५२७ गुरु पादुकाएँ थी । ऐसा ज्ञान दिपीकायाम में उल्लेख है ।

४९३) शत्रुंजय महातीर्थ पर विशेष रुप से 'ध्यान' करना चाहिए ।

हर-साधु-साध्वी के जीवन में ४ प्रकार के गुरु होते है ।

१. सम्यकत्व गुरु= जिन से धर्म प्राप्त हुआ, धर्म श्रध्दा दृढ हुई ।

२. दिक्षा गुरु = जिसने संसार से छुडाया, विरती प्रदान की ।

३. बडी दिक्षा गुरु = जिसने पांच महाव्रत प्रदान कीये

४. श्रुत गुरु = जिसने शुध्द तत्वज्ञान (सम्यगज्ञान) शीखाया ।

पूज्य गुरुदेवनी पावन वाणी

जे पुण्यात्मा आगम शास्त्रोने लखीने गुणीजनोने आपे छे,
ते पुण्यात्मा तेटला अक्षर प्रमाण वर्ष वाळो देव बने छे।

– पूर्व महर्षि

✻ अगियार अंग उपांग बार, दशपयन्ना जाणीअे,
छ छेद ग्रंथ प्रशस्त अर्था मूळ चार वखाणीये,
अनुयोगद्वार उदार नंदी, सूत्र जिनमत गाईअे,
वृत्ति टीका भाष्य चूर्णी, पिस्तालीस आगम ध्याईअे ।

✻ अे आगमनी भक्ते पूजा करतां पाप पलाय,
कुमति कुसंग कुवासना जाये समकित निर्मळ थाय ।

✻ आगम छे अविकारा जिणंदा तेरा, आगम छे अविकारा
ज्ञानज्योति प्रगट घटमांहे, जेम रविकिरण हजारा,
मिथ्यात्वी दुर्नय सविकारा, तगतगता नहीं तारा,
अल्पागम तप कलेश ते जाणो, बोले उपदेशमाला,
ज्ञानभक्ति जिनपद निपजावे, नामे जयंत भूपाळा ।

✻ सायरमां मीठी महेरामण, शृंगीमत्स्य आहारा,
शरणविहीना दीना मीना, ओर ते सायर खारा,
पंचमकाळ फळी विष ज्वाळा, मंत्रमणि विषहारा,
श्री शुभवीर जिनेश्वर आगम, जिन–पडिमा जयकारा।

मेवाड दिवाकर प.पू. गुरूदेवश्री सर्वोदयसागरजी म.सा. के जीवन काल में हुई विशिष्ट शासन प्रभावना के कार्य

स्वहस्तक दिक्षा : छह (६) **विशेषण :** मेवाड दिवाकर, भोले भगवान, श्रीश्रीमाल सेठ-सेठीया समजा उध्धारक, प्राचीन साहित्य संशोधक, ज्योतिषाचार्य, **अपनी निश्रा में छरी पालक संघ :** १५, कुल ४१ चातुर्मास में से मुंबई में २१ चार्तुमास अपनी निश्रा में बच्चों की ८-८ दिन की **शिबिर :** कुल ३३ शिबिर । **साहित्य कार्य :** 5000 हस्तलिखित प्रत का संकलन, 2535 अप्रगट ग्रंथो का प्रकाशन, 650 पुस्तको का लेखन-संपादक, 100 से अधिक काव्य रचनाऐं, अनेक ग्रंथो एवं शास्त्रों के पद्यानुवाद किया। **दर्शनाचार :** पूज्यश्री अपने जीवनकाल दरम्यान 1000 से अधिक चोवीसीओं और पंचतीर्थीओ को भारत के विविध जिनालयो में बिराजमान की । ''घर घर भगवान-हर घर भगवान'' कॉन्सेप्ट के अंतर्गत कुल २००० घरों में दर्शनीय प्रतिमाओं की स्थापना एवं ६५० गुरुमूर्तिओकी स्थापना। **मंडलों की स्थापना :** 45 से अधिक विविध मंडलो की स्थापना ।

गुरूपूजा : पूज्यश्री द्वारा रचित गुरूपूजा भारतभर के २०० महिला मंडल हर महिने अमावास के दिन पढ़ते है। **गुरूस्तुप:** अचलगच्छ की गुरूस्तुप बनाने की प्राचीन परंपरा जो ४०० सालों से बंद थी उसे फीर से चालू करके १० गुरूस्तुपों का निर्माण करवाया ।

जीवदया कार्य : (१) ''एनीमल मेडीकल फंड'' का हैद्राबाद में प्रारंभ करवाया । (२) हाईकोर्ट ध्वारा उंट की हेराफेरी पर प्रतिबंध लगवाया । (३) कुत्तों के लिए सारवार केन्द्र चालू करवाया । **अनुकंपा :** भूकंप/पूर/रेल दुर्घटना/दुष्काल आदि में पूज्यश्री की प्रेरणा से विशाल रकम का अनुदान हुआ ।

पूज्यश्री के मनपसंद गीत : (१) पंखीडा ने आ पींजरु जुनु जुनु लागे....
(२) हुं केवो भाग्यशाळी... (३) जनारू जाय छे जीवन, जरा जिनवर ने जपतो जा...

संघ एकता: पूज्यश्री के शांत स्वभाव से अनेक संघो के झगडे-कुसंप को दूर करके एकता की

विशिष्ट शासन प्रभावना के कार्य :

- १५१ छोड (पींछवाई) का उद्यापन ।
- पूज्यश्री की उपस्थिति में हिन्दु मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारा, विश्व हिन्दु परिषद आदि में प्रवचन ।
- ''जैन सायन्स एक्झीबिशन'' (आगम के आधार पर) पूज्यश्री की निश्रा में ६ बार आगाम वांचनाएं हुई ।
- ४५० तीर्थंकर परमात्माओके विविध ४५० यंत्रोकी संकलना ।
- सर्वोदय सीनीयर सीटीझन फ्री टीफीन योजना का अनेक जगह प्रारंभ करवाया ।

पालीताणा-समेतशिखरजी ९९ यात्रा, चउविहार छट्ठ करी ७ यात्रा, भारत के १४ राज्यो मे विचरण

वर्षीतप-ज्ञानपंचमी-वीशस्थानकतप-वर्धमानतप-नवपदकी ओळी-१० हजार गाथा कंठस्थ

आ = आत्मा

गम = गमन

आत्मा की और गमन करावे, वो है आगम

इस पुस्तक और आगम वचन हमें सुविशुद्ध, सुविहित, संवेगी साधुजीवन की परिणती की और ले जाए ।

साधुता से शुरु हुई अपनी अध्यात्म यात्रा सिध्धत्व में वीलीन बने यही मंगल कामना ।

Chandresh Poladiya

Classic Printers

98702 25825 / 99200 90067

Email : cvpoladiya@gmail.com